कबीर का रहस्यवाद

[कबीर के दार्शनिक विचारों का गंभीर विवेचन]

डा० रामकुमार वर्मा

नवीं आवृत्ति : सन् १९६१ ईसवी

चार रुपये

मुद्रक : द्वारका नाथ भार्गव,
भार्गव प्रेस, १ बाई-का-बाग, इलाहाबाद-३

श्रीमान् डाक्टर ताराचन्द
एम्० ए०, डी० फिल्० (आक्सन)
की सेवा मे सादर
समर्पित

—रामकुमार

चौथे संस्करण की भूमिका

मुझे प्रसन्नता है कि इस पुस्तक ने कबीर की कविता और उसके दृष्टिकोण के सम्बंध मे बहुत सी भ्रांतियाँ दूर की है । अब यह पुस्तक नये सस्करण मे विद्वानो की सेवा मे जा रही है ।

हिन्दी विभाग
२४-१०-४१

रामकुमार वर्मा

रहस्यवाद आत्मा की उस अर्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है
जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शात
और निश्छल सम्बध जोडना चाहता है और यह
सम्बध यहाँ तक बढ जाता है कि दोनो
मे कुछ भी अन्तर नही रह जाता।

विषय-सूची

कबीर का रहस्यवाद

कहत कबीर यहु अकथ कथा है,
कहता कही न जाई ।
—कबीर

कबीर के समालोचको ने अभी तक कबीर के शब्दो को तानपूरे पर गाने की चीज ही समझ रक्खा है पर यदि वास्तव मे देखा जाय तो कबीर का विश्लेषण बहुत कठिन है । वह इतना गूढ और गभीर है कि उसकी शक्ति का परिचय पाना एक प्रश्न हो जाता है । साधारण समझने वालो की बुद्धि के लिए वह उतना ही अग्राह्य है जितना कि शिशुओ के लिए मासाहार । ऐसी स्वतत्र प्रवृत्ति वाला कलाकार किसी साहित्य-क्षेत्र मे नही पाया गया । वह किन-किन स्थलो मे विहार करता है, कहॉ-कहा सोचने के लिये जाता है, किस प्रशान्त वन-भूमि के वातावरण मे गाता है, ये सब स्वतत्रता के साधन उसी को ज्ञात थे, किसी अन्य को नही । उसकी शैली भी इतना अपनापन लिए हुए है कि कोई उसकी नकल भी नही कर सकता । अपना विचित्र शब्द-जाल, अपना स्वतत्र भावोन्माद, अपना निर्भय आलाप, अपने भाव-पूर्ण पर बेढगे चित्र, ये सभी उसके व्यक्तित्व से ओत-प्रोत थे । कला के क्षेत्र का सब कुछ उसी का था । छोटी से छोटी वस्तु अपनी लेखनी से उठाना, छोटी से छोटी विचारावली पर मनन करना उसकी कला का आवश्यक अंग था । किसी अन्य कलाकार अथवा चित्रकार पर आश्रित होकर उसने अपने भावो का प्रकाशन नही किया । वह पूर्ण सत्यवादी था, वह स्वाधीन चित्रकार था । अपने ही हाथो से तूलिका साफ करना, अपने ही हाथो चित्रपट की धूल झाडना, अपने ही हाथो से रग तैयार करना—जैसे उसने अपने कार्य के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता समझी ही नही । इसीलिए तो उसकी कविता इतना अपना-पन लिए हुए है ।

कबीर अपनी आत्मा का सबसे आज्ञाकारी सेवक था। उसकी आत्मा से जो ध्वनि निकली उसका निर्वाह उसने बहुत खूबी के साथ किया। उसे यह चिन्ता नही थी कि लोग क्या कहेगे, उसे यह भी डर नही था कि जिस समाज मे मैं रह रहा हूँ उस पर इतना कटुतर वाक्य-प्रहार क्यो करूँ ? उसकी आत्मा से जो ध्वनि निकली उसी पर उसने मनन किया, उसी का प्रचार किया और उसी को उसने लोगो के सामने जोरदार शब्दो मे रक्खा। न उसने कभी अपने को धोखा दिया और न कभी समाज के कारण अपने विचारो मे कुछ परिवर्तन ही किया। यद्यपि वह अपढ रहस्यवादी था, उसने 'मसि-कागद' छुआ भी नही था, तथापि उसके विचारो की समानता रखने वाले कितने कवि हुए है ? जहाँ कही भी हम उसे पाते हैं वहाँ वह अपने पैरो पर खडा है, किसी का लेश मात्र भी सहारा नही है।

काव्य के अनुसार जितने विभाग हो सकते है उतने विभाग के सामने रखिए, किसी विभाग मे भी कबीर नही आ सकते। बात यह नही है कि कबीर मे उन विभागो मे आने की क्षमता ही नही है पर बात यह है कि उसने उनमे आना स्वीकार ही नही किया। उसने साहित्य के लिए नही गाया, किसी कवि की हैसियत से नही लिखा, चित्रकार की हैसियत से चित्र नही खीचे। जो कुछ भी उस रहस्यवादी के हृदय से निकला वह इस विचार से कि अनंत शक्ति एक सत्पुरुष का संदेश लोगो को किस प्रकार दिया जाय, उस सत्पुरुष का व्यक्तित्व किस प्रकार प्रकट किया जाय, ईश्वर की प्राप्ति के लिये किस प्रकार लोगो से भेद-भाव हटाया जाय, "एक बिन्दु से विश्व रचो है को बाम्हन को सूद्रा" का प्रतिपादन किस प्रकार किया जाय, सत्य की मीमासा का क्या रूप हो सकता है, माया किस प्रकार सारहीन चित्रित की जा सकती है, यही उसका विचार था जिस पर उसने अपने विश्वास की मजबूत दीवाल उठाई थी।

कबीर की प्रतिभा का परिचय न पा सकने का एक कारण और है। वह यह कि लोग उसे अभी तक समझ ही नहीं सके हैं। 'रमैनी' और

'शब्दो' मे उसने ईश्वर और माया की जो मीमासा की है, वह साधारण लोगो की बुद्धि के बाहर की बात है।

दुलहनी गावहु मङ्गलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पञ्चतत बराती,
रामदेव मोरे पाहुँने आए, मैं जोबन मे माती,
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार
राम देव सँगि भाँवर लेहूँ, धनि धनि भाग हमार,
सुर तेतीसूँ कौतिक आए, मुनिवर सहस्र अठासी,
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी ॥[१]

साधारण पाठक इस रहस्यमयी मीमासा को सुलझाने मे सर्वथा असफल हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि जो 'उल्टबाँसियाँ' कबीर ने लिखी हैं उनकी कुजियाँ प्राय ऐसे साधु और महतो के पास है जो किसी को बतलाना नहीं चाहते, अथवा ऐसे साधु और महत अब हैं ही नही।

निम्नलिखित उल्टबाँसी का अर्थ अनुमान से अवश्य लगाया जा सकता है, पर कबीर का अभिप्राय क्या था, यह कहना कठिन है :—

अवधू वो तत्तु रावल राता।
नाचै बाजत बाजु बराता॥
मौर के माथे दुलहा दीन्हा।
अकथ जोरि कहाता।
मँडये के चारन समधी दीन्हा
पुत्र ब्याहिल माता॥
दुलहिन लीपि चौक बैठारी,
निर्भय पद परकासा।

---

[१] कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा), पृष्ठ ८७।

भाते उलटि बरातिहि बखायो,
भली बनी कुशलाता।
पाणिग्रहण भयो भौ मंडन,
सुषमनि सुरति समानी।
कहहि कबीर सुनो हो संतो
बूझो पण्डित ज्ञानी ॥[१]

राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० ने अपने कबीर शीर्षक लेख मे इसे योग की परिस्थितियो का चित्रण माना है।[२]

एक बात और है। कबीर ने आत्मा का वर्णन किया, शरीर का नही। वे हृदय की सूक्ष्म भावनाओ को तह तक पहुच गये है। 'नख-शिख' अथवा शरीर-सौदर्य के झमेले मे नही पडे। यदि शरीर अथवा 'नख-शिख' वर्णन होता तो उसका निरूपण सहज ही मे हो सकता था। ऐसा सिर है, ऐसी आँखें है, ऐसे कपोल है, अथवा कमल-नेत्र है, कलभ-कर बाहु हैं, वृषभ-कध है। किन्तु आत्मा का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। उस तक पहुँच पाना बडे बडे योगियो की शक्ति के बाहर है। ऐसी स्थिति मे कबीर ने एक रहस्यवादी बन कर जिन जिन परिस्थितियो मे आत्मा का वर्णन किया है वे कितने लोगो की समझ मे आ सकती हैं? शरीर का स्पर्श तो इन्द्रियो द्वारा किया जा सकता है पर आत्मा का निरूपण करना बहुत कठिन है। आध्यात्मिक शक्तियो द्वारा ही आत्मा का कुछ कुछ परिचय पाया जा सकता है। आध्यात्मिक शक्तियाँ सभी मनुष्यो मे नही रह सकती। इसीलिए सब लोग कबीर की कविता की थाह सफल रूप से कभी न ले सकेंगे।

आत्मा का निरूपण करना कबीर के लिये कहाँ तक सफलता का द्वार खोल सका, यह एक दूसरा प्रश्न है। कबीर का सारभूत विचार

१ बीजक मूल (श्रीवेंकटेश्वर प्रेस) सं० १९६९, पृष्ठ ७४-७५
२ कबीर—रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए०, पृष्ठ २४
[कलकत्ता यूनीवर्सिटी प्रेस, १९२८]

यही था कि वे किस प्रकार मनुष्य की आत्मा को प्रकाश मे ला दें। यह बात सत्य है कि कभी कभी उस आत्मा का चित्र धुँधला उतरता है, कभी हम उसे पहिचान ही नही सकते। किसी स्थान पर वह काले धब्बे का रूप रखता है। किसी स्थान पर उस चित्र का ऐसा बेढगा रूप हो जाता है कि कलाकार की इस परिस्थिति पर हँसने को जी चाहता है, पर अन्य स्थानो पर वह चित्र भी कैसा होता है! प्रातःकालीन सूर्य की सुनहली किरणो की भाति चमकता हुआ, उषा के रगीन उडते हुए बादलो की भाति झिलमिलाता हुआ, किसी अन्धकारमयी काली गुफा मे किरणो की ज्योति की भाँति। इन विभिन्नताओ को सामने रखते हुए, और कबीर की प्रतिभा का वास्तविक परिचय पाने की पूर्ण क्षमता न होते हुए हम एक अन्धे के समान ढूँढते हैं कि साहित्य मे कबीर का कौन सा स्थान है!

इसमे सन्देह है कि कबीर की कल्पना के सारे चित्रो को समझने की शक्ति किसी मे आ सकेगी अथवा नही। जो हो, कबीर की बानी पढ़ जाने के बाद यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि कबीर के पास कुछ ऐसे चित्रो का कोष है जिसमे हृदय मे उथल-पुथल मचा देने की बडी भारी शक्ति है। हृदय आश्चर्य-चकित होकर कबीर की बातो को सोचता रह ही जाता है, वह हतबुद्धि होकर अशान्त हो जाता है। उस समय कबीर की प्रतिभा एक अगम्य विशाल वन की भाँति प्रतीत होती है और पाठको का मस्तिष्क एक भोले और अशक्त बालक की भाँति।

अन्त मे यही कहना शेष है कि कबीर ने दार्शनिक लोगो के लिए अपनी कविता नही लिखी। उन्होने कविता लिखी है धार्मिक विचारो से पूर्ण जिज्ञासुओ के लिए। समय बतला देगा कि कबीर की कविता न तो नीरस ज्ञान है और न केवल साधुओ के तानपूरे की चीज। समालोचकगण कबीर की रचना को सामने रखकर उसके काव्य-रत्नाकर से थोडे से रत्न पाने का प्रयत्न करे, चाहे वे जगमगाते हुए जीवन के सिद्धान्त-रत्न हो या आध्यात्मिक जीवन के झिलमिलाते हुए रत्न-कण।

रहस्यवाद

अब हमें कबीर के रहस्यवाद पर विचार करना है । कबीर की 'बानी' को आद्योपान्त पढ़ जाने पर ज्ञात हो जाता है कि वे सच्चे रहस्यवादी थे । यद्यपि कबीर निरक्षर थे तथापि वे ज्ञानशून्य नही थे। उनके सत्सग, पर्यटन और अनुभव आदि ने उन्हे बहुत ऊपर उठा दिया था। वे एक साधारण व्यक्ति की श्रेणी से परे थे । रामानन्द का शिष्यत्व उनके हिन्दू धार्मिक सिद्धान्तो का कारण था और जुलाहे के घर पालित होना तथा शेख तकी आदि सूफियो का सत्सग होना उनके मुसलमानी विचारो से परिचित होने का कारण था ।

इस व्यवहार-ज्ञान से ओत-प्रोत होकर उन्होने अपने धार्मिक सिद्धातो का प्रतिपादन बडी कुशलता के साथ किया और वह कुशलता भी ऐसी जिसमे कबीर के व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है । इसके पहले कि हम कबीर के रहस्यवाद की विवेचना करे, रहस्यवाद के सभी अगो पर पूरा प्रकाश डालना उचित है ।

रहस्यवाद की विवेचना अत्यत मनोरजक होने पर भी दु साध्य है । वह हमारे सामने एक गहन वन-प्रान्त की भाँति फैली हुई है । उसमे जटिल विचारो की कितनी काली गुफाएँ है, कितनी शिलाएँ हैं ! उसकी दुर्गमता देख कर हमारे हृदय का निर्बल व्यक्ति थक कर बैठ जाता है । सागर के समान इस विषय का विस्तार विश्व-साहित्य भर मे फैला हुआ है । न जाने कितने कवियो के हृदय से रहस्यवाद की भावना निर्भर की भाँति प्रवाहित हुई हैं । उन्होंने उसके अलौकिक आनन्द का अनुभव कर मौन धारण कर लिया है। न जाने कितने योगियो ने इस दैवी अनुभूति के प्रवाह मे अपने को बहा दिया है । इसी रहस्यवाद को हम परिभाषा का रूप देना चाहते हैं, एक अमृत-कुण्ड को मिट्टी के घडे में भरना चाहते हैं ।

परिभाषा

रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सबध जोड़ना चाहती है, यह सबध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनो मे कुछ भी अंतर नही रह जाता। जीवात्मा की शक्तियाँ इसी शक्ति के अनंत वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन मे केवल उसी दिव्य शक्ति का अनत तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय मे प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अग-प्रत्यगो मे प्रकाशित होती है। यही दिव्य संयोग है। आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा मे परमात्मा के गुणो का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा मे आत्मा के गुणो का प्रदर्शन। कबीर की उल्टबाँसियाँ प्राय- इसी भावना पर चलती हैं।

> **सतो जागत नींद न कीजै।**
> **काल नहिं खाई कल्प नहीं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै॥**
> **उलटि गंगा समुद्रहि सोखै, शशि और सूर गरासै।**
> **नव ग्रह मारि रोगिया बैठे, जल मे बिंब प्रकासै॥**
> **बिनु चरणन के दुहुँ दिस धावै, बिनु लोचन जग सूझै॥**
> **ससा उलटि सिह को ग्रासै, अचरज कोऊ बूझै॥**

इस संयोग मे एक प्रकार का उन्माद होता है, नशा रहता है। उस एकान्त सत्य से, उस दिव्य-शक्ति से जीव का ऐसा प्रेम हो जाता है कि वह अपनी सत्ता परमात्मा की सत्ता मे अन्तर्हित कर देता है। उस प्रेम मे चचलता नही रहती, अस्थिरता नही रहती। वह प्रेम अमर होता है।

ऐसे प्रेम मे जीव की सारी इद्रियो का एकीकरण हो जाता है। सारी इद्रियो से एक स्वर निकलता है और उनमे अपने प्रेम की वस्तु के पाने की लालसा समान रूप से होने लगती है। इद्रियाँ अपने आराध्य के

प्रेम को पाने के लिए उत्सुक हो जाती है और उनकी उत्सुकता इतनी बढ जाती है कि वे उसके विविध गुणो का ग्रहण समान रूप से करती है। अत मे वह सीमा इस स्थिति को पहुँचती है कि भावोन्माद मे वस्तुओ के विविध गुण एक ही इद्रिय पाने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। ऐसी दशा मे शायद इद्रियाँ भी अपना कार्य बदल देती है। एक बार प्रोफेसर जेम्स ने यही समस्या आदर्शवादियो के सामने सुलझाने के लिये रक्खी थी कि यदि इद्रियाँ अपनी-अपनी कार्य शक्ति एक दूसरे से बदल ले तो ससार मे क्या परिवर्तन हो जायेंगे ? उदाहरणार्थ, यदि हम रगो को सुनने लगे और ध्वनियो को देखने लगे तो हमारे जीवन मे क्या अन्तर आ जायगा ! इसी विचार के सहारे हम सेट मार्टिन का रहस्यवाद से सबंध रखने वाली परिस्थिति समझ सकते है जब उन्होने कहा था

मैने उन फूलो को सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियो को देखा जो जाज्वल्यमान थी।[१]

अन्य रहस्यवादियो का भी कथन है कि उस दिव्य अनुभूति मे इद्रियाँ अपना काम करना भूल जाती है। वे निस्तब्ध-सी होकर अपने कार्य-व्यापार ही नही समझ सकती। ऐसी स्थिति मे आश्चर्य ही क्या कि इद्रियाँ अपना कार्य अव्यवस्थित रूप से करने लगे। इसी बात से हम उस दिव्य अनुभूति के आनद का परिचय पा सकने है जिसमे हमारी सारी इद्रियाँ मिल कर एक हो जाती है, अपना कार्य-व्यापार भूल जाती हैं। जब हम उस अनुभूति का विश्लेषण करने बैठते है तो उसमे हमे न जाने कितने गूढ रहस्यो और आश्चर्यमय व्यापारो का पता लगता है।

---

[१] I heard flowers that sounded and saw notes that shone **अंडरहिल रचित मिस्टिसिज्म पृष्ठ ८**

फारसी मे शमसी तबरीज़ की कविता मे उक्त विचारो का स्पष्टीकरण इस प्रकार है :--

[१]उसके समिलन की स्मृति मे,
उसके सौन्दर्य की आकाक्षा मे
वे उस मदिरा को—जिसे तू जानता है—
पीकर बेसुध पडे हैं ।
कैसा अच्छा हो कि उसकी गली के द्वार पर
उसका मुख देखने के लिए
वह रात को दिन तक पहुँचा दे ।
तू अपने
शरीर की इद्रियो को
आत्मा की ज्योति से जगमगा दे ।

रहस्यवाद के उन्माद मे जीव इद्रिय-जगत से बहुत ऊपर उठ कर

بیاد بزم وصالش در آرزوے جمالش
فتاده بے خبراند ز آں شراب که دانی
چه خوش بود که بکویش بر آستانه اگریش
براے دیدن رویش شبے بروز رسانی
حواس خ خود را بنور جان تو بر افروز

[१]ब यादे बज़्मे विसालश् दर आरज़ू ए जमालश्
फुतादा बे खबर अंद जेआं शराब कि दानी
चि ख़ुश बूअद कि बकूयश बर आस्तान ए कूयश
बराए दीदने रूयश शमे बरोज रसानी
हवा से ज़ुल्म ए खुद रा बनूरे जाने तो बर अफरोज
.. ..

दीवाने शमसी तबरीज, पृष्ठ १७६

विचार-शक्ति और भावनाओ का एकीकरण कर अनत और अतिम प्रेम के आधार मे मिल जाना चाहता है। यही उनकी साधना है, यही उसका उद्देश्य है। उसमे जीव अपनी सत्ता को खो देता है। मै, मेरा, और मुझे का विनाश रहस्यवाद का एक आवश्यक अग है। एक अपरिमित शक्ति की गोद ही मे 'मैं' और 'मेरा' सदैव के लिए अन्तर्हित हो जाता है। वहाँ जीव अपना आधिपत्य नही रख सकता। एक सेवक की भाँति अपने को स्वामी के चरणो मे भुला देना चाहता है। ससार के इन बाह्य बन्धनो का विनाश कर आत्मा ऊपर उठती है, हृदय की भावना साकार बन कर ऊपर की ओर जाती है केवल इसलिए कि वह अपनी सत्ता एक असीम शक्ति के आगे डाल दे हृदय की इस गति मे कोई स्वार्थ नही, ससार की कोई वासना नही, कोई सिद्धि नही, किसी ऐश्वर्य की प्राप्ति नही, केवल हृदय के प्रेम की पूर्ति है। और ऐसा हृदय वह चीज है जिसमे केवल भावनाओ का केन्द्र ही नही वरन् जीवन की वह अतरग अभिव्यक्ति है जिसके सहारे ससार के बाह्य पदार्थों मे उसकी सत्ता निर्धारित होती है। अनन्त सत्ता के सामने जीव अपने को इतने समीप ला देता है कि उसको साधारण भावना मे अनत शक्ति की अनुभूति होने लगती है। अग्रेजी के एक कवि कौलरिज ने इसी भावना को इस प्रकार प्रकट किया है —

[1] "हम अनुभव करते है कि हम कुछ नही हैं,

We feel we are nothing for all is
Thou and in Thee
We feel we are something, that also
has come from Thee
We know we are nothing, but Thou
wilt help us to be
Hallowed be Thy name halleluiah

क्योंकि तू सब कुछ है और सब कुछ तुझ मे है।
हम अनुभव करते हैं कि हम कुछ है,
वह भी तुझसे प्राप्त हुआ है।
हम जानते हे कि हम कुछ भी नही हे,
परन्तु तू हमे अस्तित्व प्राप्त करने मे सहायक होगा।
तेरे पवित्र नाम की जय हो !"

कबीर की निम्नलिखित प्रसिद्ध पक्तियाँ इस विचार को कितने सरल और स्पष्ट रूप मे सामने रखती हैं —

लोका जानि न भूलौ भाई,
खालिक खलक, खलक में खालिक
सब घट रह्यो समाई।

अतएव हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि रहस्यवाद अपने नग्न स्वरूप मे एक अलौकिक विज्ञान है जिसमे अनत के सबन्ध की भावना का प्रादुर्भाव होता है और रहस्यवादी वह व्यक्ति है जो इस संबन्ध के अन्यन्त निकट पहुँचता है। उसे कहता ही नही, उसे जानता ही नही वरन् उस सबध ही का रूप धारण कर वह अपनी आत्मा को भूल जाता है।

अब हमे ऐसी स्थिति का पता लगाना है जहाँ आत्मा भौतिक बन्धनो का बहिष्कार कर, ससार के नियमो का प्रतिकार कर, ऊपर उठती है और उस अनत जीवन मे प्रवेश करती है जहाँ आराधक और आराध्य एक हो जाते है, जहाँ आत्मा और अनत शक्ति का एकीकरण हो जाता है। जहाँ आत्मा यह भूल जाती है कि वह ससार की निवासनी है और उसका इस दैवी वातावरण मे आना एक अतिथि के आने के समान है। वह यह बोलने लगती है कि—

मैं सबनि औरनि मैं हूं सब,
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो।
कोइ कहौ कबीर कोइ कहौ रामराई हो।
ना हम बार बूढ़ नाहीं हम,

न हमरे चिलकाई हो ।
पटरा न जाऊँ अरबा नहीं आऊँ,
सहजि रहूँ हरि भाई हो ।
वोढन हमरै एक पछेवरा,
लोग बोलै इकताई हो ।
जुलहै तनि बुनि पान न पावल,
फारि बुनी दस ढाई हो ।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल,
तब हमरौ नाम रामराई हो ।
जग में देखौं जग न देखै मोहि,
इहि कबीर कछु पाई हो ।

अँग्रेजी मे जार्ज हरबर्ट ने भी ऐसा कहा है —

'ओ ! अब भी मेरे हो जाओ, अब भी मुझे अपना बना लो, इस 'मेरे' और 'तेरे' का भेद ही न रक्खो ।'[१]

ऐसी स्थिति का निश्चित रूप से निर्देश नही किया जा सकता। इस सयोग के पास पहुँचने के पूर्व न जाने कितनी दशाएँ, उनमे भी न जाने कितनी अन्तर्दशाएँ हैं, जिनसे रहस्यवाद के उपासक अपनी शक्ति भर ईश्वरीय अनुभूति पाना चाहते है । इसीलिए रहस्यवादियो की उत्कृष्टता मे अतर जान पडता है। कोई केवल ईश्वर की अनुभूति करता है, कोई उसे केवल प्यार कर सकने योग्य बना सका है, कोई अभिन्नता की स्थिति पर है और कोई पूर्ण रूप से आराध्य के आधीन है। संट आगस्टाईन, कबीर, जलालुद्दीन रूमी यद्यपि ऊँचे रहस्यवादी थे तथापि उनकी स्थितियो मे अतर था ।

---

[१] O, be mine still make me thine
Or rather make no still thine or mine.
(George Herbert)

परिस्थिति

इस रहस्यवादियो को उद्देश्य-प्राप्ति मे तीन परिस्थितियो की कल्पना कर सकते हैं। पहली परिस्थिति तो वह है जहाँ वह व्यक्ति-विशेष अनंत शक्ति से अपना सबध जोडने के लिए अग्रसर होता है। वह ससार की सीमा को पार कर ऐसे लोक मे पहुँचता है जहाँ भौतिक बधन नही, जहाँ ससार के नियम नही, जहाँ उसे अपने शारीरिक अवरोधो की परवाह नही है। वह ईश्वर के समीप पहुँचता है और दिव्य-विभूतियो को देख कर चकित हो जाता है। यह रहस्यवादी की प्रथम परिस्थिति है। इस परिस्थिति का वर्णन कबीर ने बडी सुन्दर रीति से किया है :—

> **घट घट मे रटना लगि रही,**
> **परघट हुआ अलेख जी।**
> **कहुँ चोर हुआ, कहुँ साह हुआ,**
> **कहुँ बाम्हन है कहुँ सेख जी॥**

कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ ससार की सभी वस्तुएँ अनत शक्ति मे विश्राम पाती हैं और सभी अनत सत्ता मे आकर मिल जाती हैं। यहाँ रहस्यवादी ने अपने लिए कुछ भी नही कहा है, वह चुप है। उसे ईश्वर की इस अनत शक्ति पर आश्चर्य-सा होता है। वह मौन होकर इन बातो को देखता-सुनता है। यद्यपि ऐसे समय वह अपना व्यक्तित्व भूल जाता है। पर ईश्वर की अनुभूति स्वय अपने हृदय मे पाने मे असमर्थ रहता है। इसे हम रहस्यवादियो की प्रथम स्थिति कहेगे।

द्वितीय स्थिति तब आती है जब आत्मा परमात्मा मे प्रेम करने लग जाती है। भावनाएँ इतनी तीव्र हो जाती है कि आत्मा मे एक प्रकार का उन्माद या पागलपन छा जाता है। आत्मा मानो प्रकृति का रूप रख पुरुष—आदि पुरुष—से प्यार करती है। ससार की अन्य वस्तुएँ उसकी नज़र से हट जाती हैं। आश्चर्य चकित होने की अवस्था निकल जाती है और रहस्यवादी चुपचाप अपने आराध्य को प्यार करने लग जाता है। वह प्यार इतना प्रबल होता है कि उनके समक्ष विश्व की कोई

चीज स्थिर नही रह सकती। वह प्रेम बरसात के उस प्रबल नाले की भाँति होता है जिसके सामने कोई भी वस्तु नही ठहर सकती—पेड, पत्थर, झाड, झखाड सब उस प्रवाह मे बह जाते है। उसी प्रकार इस प्रेम के आगे कोई भी वासना नही ठहर सकती। सभी भावनाएँ, हृदय की सभी वासनाएँ बडे जोर से एक ओर को बह जाती है और एक—केवल एक—भाव रह जाता है, और वह है प्रेम का प्रवाह। जिस प्रकार किसी जल-प्रपात के शब्दो मे समीप के सभी छोटे-छोटे स्वर अन्तर्हित ही हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार उस ईश्वरीय प्रेम मे सारे विचार या तो लुप्त ही हो जाते हैं अथवा उसी प्रेम के बहाव मे बह जाते है। फिर कोई भावना उस प्रेम के प्रबल प्रवाह को रोकने के लिए आगे नही आ सकती।

रेनाल्ड ए० निकल्सन ने लदन यूनीवर्सिटी मे "सूफीमत मे व्यक्तित्व" पर तीन भाषण दिये थे। वे सूफीमत के सम्बन्ध मे कहते है :—

[१]यह सत्य है कि परमात्मा के मिलापानुभव मे मध्यस्थ के लिए कोई स्थान नही है। वहाँ तो केवल एकान्त देवी सम्मिलन की अनुभूति ही हृदयगम होती है वस्तुत- हम यह भावना विशेषकर प्राचीन सूफियो मे पाते है कि परमात्मा ही उपासना की एक मात्र वस्तु हो, दूसरी वस्तुओ

---

[१] It is true that in the experience of union with God, there is no room for a Madiator Here the absolute Divine Unity is realised. And of course, we find especially among the ancient Sufis, a feeling that God must be the sole object of aboration, that any regard for other objects is an offence against Him.

रिनाल्ड ए० निकल्सन रचित "दि आइडिया आॅव् पर्सनालिटी इन सूफीज्म", पृष्ठ ६२

का ध्यान करना उसके प्रति अपराध करना है।

'तजकिरातुल औलिया' से भी इसी मत की पुष्टि होती है। उसमे बसरा की स्त्री-संत राबेआ के विषय मे लिखा है —

[1]कहा है कि उसने (राबेआ ने) कहा—रसूल को मैंने स्वप्न मे देखा। रसूल ने पूछा, "ए राबेआ, मुझसे मैत्री रखती हो ?"

जवाब दिया "ऐ अल्लाह के रसूल, कौन है जो तुमसे मैत्री नही रखता, किन्तु ईश्वर के प्रेम ने मुझे ऐसा बाँध लिया है कि उससे अन्य के लिए मेरे हृदय मे मित्रता अथवा शत्रुता का स्थान नही रह गया है।"

रहस्यवादी की यह एक गभीर परिस्थिति है जहाँ वह अपने आराध्य के प्रेम से इतना ओत-प्रोत हो जाता है कि उसे अन्य कुछ सोचने का अवकाश ही नही मिलता।

इसके पश्चात् रहस्यवादियो की तीसरी स्थिति आती है जो रहस्यवाद की चरम सीमा कहला सकती है। इस दशा मे आत्मा और परमात्मा का इतना एकीकरण हो जाता है कि फिर उनमे कोई भिन्नता नही रहती। आत्मा अपने मे परमात्मा का अस्तित्व मानती है और परमात्मा के गुणो को प्रकट करती है। जिस प्रकार प्रारभिक अवस्था मे आग

نقل است که گفت رسول را بخواب دیدم گفت یا رابعه مرا دوست داری گفتم یا رسول الله که بود ترا دوست ندارد لیکن محبت حق مرا چنان فرو گرفته است که دشمنی و دوستی غیر او در دلم جای نمانده است ۔

[1]नक्ल अस्त कि गुफ्तरसूल रा बख़्वाब दीदम गुफ्त या राबेआ, मरा दोस्त दारी—गुफ़्तम या रसूल अल्लाह कि बूअद तुरा दोस्त न दारद। लेकिन मुहब्बते हक मरा चुना फरोगिरिफ्ता कस्त कि दुश्मनी व दोस्ती ए ग़ैरे ऊरा दर दिलम जाय न मादा अस्त॥

तज़किरातुल औलिया, पृष्ठ ४६

मत्वा मुजतबाई देहली,

मुहम्मद अब्दुल अहद द्वारा सम्पादित, १३२७ हिजरी।

और लोहे का एक गोला, ये दोनो भिन्न हैं पर जब आग से तपाये जाने पर गोला भी लाल होकर अग्नि का स्वरूप धारण कर लेता है तब उस लोहे के गोले मे वस्तुओ के जलाने की वही शक्ति आ जाती है जो आग मे है। यदि गोला आग से अलग भी रख दिया जाय तो भी लाल स्वरूप रख कर अपने चारो ओर आँच फेकता रहेगा। यही हाल आत्मा और परमात्मा के ससर्ग से होता है। यद्यपि प्रारभिक अवस्था मे माया के वातावरण मे आत्मा और परमात्मा दो भिन्न शक्तियाँ जान पडती है पर जब दोनो आपस मे मिलती है तो परमात्मा के गुणो का प्रवाह आत्मा मे इतने अधिक वेग से होता है कि आत्मा के स्वाभाविक निज के गुण तो लुप्त हो जाते है और परमात्मा के गुण प्रकट जान पडते है। वही अभिन्न सम्बन्ध रहस्यवादियो की चरम सीमा है। इसका फल क्या होता है।

—गभीर एकान्त सत्य का परिचय

—पर शान्ति की अवतारणा

—जीवन मे अनत शक्ति और चेतना

—प्रेम का अभूतपूर्व आविर्भाव

—श्रद्धा और भय . .

—भय, वह भय नही जिससे जीवन की शक्तियो का नाश हो जाता हैं किन्तु वह भय जो आश्चर्य से प्रादुर्भूत होता है और जिसमे प्रेम, श्रद्धा और आदर की महान् शक्तियाँ छिपी रहती हैं। ऐसी स्थिति मे जीवन मे व्यापक शक्तियाँ आती हैं और आत्मा इस बधन-मय ससार से ऊपर उठकर उस लोक मे पहुँच जाती है जहाँ प्रेम का अस्तित्व है और जिसके कारण आत्मा और परमात्मा में कुछ भिन्नता प्रतीत नही होती। अनंत की दिव्य विभूति जीवन का आवश्यक अग बनाती है और शरीर की सारी शक्तियाँ निरालम्ब होकर अपने को अनत की गोद मे छोड देती हैं।

जिस प्रकार मछलियाँ समुद्र मे तैरती हैं, जिस प्रकार पक्षी वायु मे झूलते हैं, तेरे आलिगन से हम विमुख नही हो सकते। हम साँस लेते है और तू वहाँ वर्तमान है।'

इस प्रकार की रहस्यवादी दैवी शक्ति से युक्त होकर ससार के अन्य मनुष्यो से बहुत ऊपर उठ जाता है। उसका अनुभव भी अधिक विस्तृत और आध्यात्मिक हो जाता है। उसका ससार ही दूसरा हो जाता है और वह किसी दूसरे ही वातावरण मे विचरण करने लगता है।

किंतु रहस्यवादी की यह अनुभूति व्यक्तिगत ही समझनी चाहिए। उसका एक कारण है। वह अनुभूति इतनी दिव्य, इतनी अलौकिक होती है कि ससार के शब्दो मे उसका स्पष्टीकरण असभव नही तो कठिन अवश्य है। वह काति दिव्य है, अलौकिक है। हम उसे साधारण आँखो से नही देख सकते। वह ऐसा गुलाब है जो किसी बाग मे नही लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगधि ही पाई जा सकती है। वह ऐसी सरिता है कि उसे हम किसी प्रशस्त वन मे नही देख सकते वरन् उसे कलकल नाद करते हुए ही सुन सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार की भाषा इतनी ओछी है कि उसमे हम पूर्ण रीति से रहस्यवाद की अनुभूति प्रकट ही नही कर सकते। दूसरी बात यह है कि रहस्यवाद की यह भावुक विवेचना समझने की शक्ति भी तो सर्वसाधारण मे नही है। रहस्यवादी अपने अलौकिक आनद मे विभोर होकर यदि कुछ कहता है तो लोग उसे पागल समझते है। साधारण मनुष्यो के विचार इतने उथले हैं कि उनमे रहस्यवाद की अनुभूति समा ही नही सकती। इसलिए

---

१ As fishes swim in briny sea
As fouls do float in the air,
From the embrace we can not flee,
We breathe and Thou art there
(John Stuart Blackie)

'अलहल्लाज मंसूर' अपनी अनुभूति का गीत गाते गाते थक गया पर लोग उसे समझ ही नही सके। लोगो ने उसे ईश्वरीय सत्ता का विनाश करनेवाला समझ कर फाँसी दे दी। इसी लिए रहस्यवादियो को अनेक स्थलो पर चुप रहना पड़ता है। उसका कारण वे यही बतला सकते हैं कि :—

'नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत।'

इस विचार को निकलसन और ली द्वारा सम्पादित और क्लैरंडन प्रेस आक्सफर्ड से प्रकाशित 'दि आक्सफर्ड बुक आव् इंग्लिश मिस्टिकल वर्स' की प्रस्तावना मे हम बड़े अच्छे रूप में पाते हैं —

वतुस्त. रहस्यवाद का सारभूत तत्त्व कभी प्रकाशित नही किया जा सकता क्योंकि वह उस अनुभव से पूर्ण है जो शाब्दिक अर्थ मे अतरतम पवित्र प्रदेश का अव्यक्त रहस्य है और इसीलिए अपमानित होने के भय से रहित है। क्योंकि केवल वे ही उसे समझ सकते हैं जो उस पवित्र प्रदेश में प्रवेश कर पाते हैं, अन्य नही। यहाँ तक कि प्रविष्ट हुए व्यक्ति भी फिर बाहर आने पर उस भाषा की असमर्थता के कारण जिसके द्वारा वे अपने उत्कृष्ट व्यापार को प्रकट करते, अपने ओठों को बन्द पाते हैं (कुछ बोल नही सकते)। जो कुछ उन्होंने देखा अथवा जाना है उसके प्रकाशित करने के लिए प्रतिदिन के व्यवहार की भाषा मे कोई शब्द नहीं है और कम से कम क्या वे तर्क या न्याय की विचार-शृंखला के साधनों अथवा वाक्याशो से अपने विचारो के पर्याप्त प्रदर्शन की आशा रख सकते हैं ?[१]

---

१ The most essential part of mysticism can not, of course, ever pass into expression, in as much as it consists in an experience which is in the most literal sense ineffable. The secret of the inmost sanctuary is not in

फिर रहस्यवादी कविता ही मे क्यो अपने विचारो को अधिकतर प्रकट करते हैं, इसका कारण भी सुन लीजिए :—

गद्य के अपरिष्कृत विषय को ऐसे रूप मे परिवर्तित करने की निराश चेष्टा मे जिससे उनकी आवश्यकता की पूर्ति किसी रूप मे हो सके, बहुत से (रहस्यवादी) कविता की ओर जाते हैं जो उनके अनुभव के कुछ सकेतो को हीन से हीन पर्याप्त रूप मे प्रकाशित कर सके। अपनी कविता की मुग्धध्वनि से, उसकी अप्रस्तुत रूप से अपरिमित व्यञ्जक शक्ति के विलक्षण गुण से, उसकी लचक से वे प्रयत्न करते हैं कि उसी अनत सत्य के कुछ सकेतो को प्रकाशित कर दें जो सदैव सब वस्तुओ मे निहित हैं। ठीक उसी ध्वनि, उसी तेज और उनकी रचनाओ के ठीक उसी उत्कृष्ट जादू से, उसी प्रकाश से कुछ किरणे फूट निकलती है जो वास्तव मे दिव्य हैं।[१]

---

danger of profanation, since none but those who penetrate into that sanctuary can understand it, and those even who penetrate find, on passing out again, that their lips are sealed by the sheer inefficiency of language as a medium for conveying the sense of their supreme adventure. The speech of every day has no terms for what they have seen or known' and least of all can they hope for adequate expression through the phrases and apparatus of logical reasoning ?

[१] In despair of moulding the stubborn stuff of prose into a form that will even approximate to their need, many of them turn, there-

अब कबीर के रहस्यवाद पर दृष्टि डालिए।

कबीर का रहस्यवाद अपनी विशेषता लिए हुए है। वह एक ओर तो हिन्दुओ के अद्वैतवाद के क्रोड मे पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानो के सूफी-सिद्धान्तो को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिंदू और मुसलमान दोनो प्रकार के सन्तो के सत्सग में रहे और वे प्रारम्भ से ही यह चाहते थे कि दोनो धर्म वाले आपस मे दूध-पानी की तरह मिल जायँ इसी विचार के वशीभूत होकर उन्होने दोनो मतो से सम्बध रखते हुए अपने सिद्धातो का निरूपण किया। रहस्यवाद मे भी उन्होंने अद्वैतवाद और सूफी मत की 'गगा-जमुनी' साथ ही बहा दी।

अद्वैतवाद

अद्वैतवाद ही मानो रहस्यवाद का प्राण है। शकर के अद्वैतवाद मे जो ईसा की ८वी सदी मे प्रादुर्भूत हुआ, आत्मा और परमात्मा की

---

fore, to poetry as the medium which will convey least inadequately some hints of their experience. By the rhythm of the glamour of their verse, by its peculiar quality of suggesting infinitely more than it ever says directly, by its elasticity they struggle to give what hints they may of the Reality that is eternally underlying all things and it is precisely through that rhythm and that glamour and the high enchantment of their writing that some rays gleam from the light which is supernal

दि आक्सफ़र्ड बुक ऑव मिस्टिकल वर्स—इण्ट्रोडक्शन।

वस्तुत: एक ही सत्ता है। माया के कारण ही परमात्मा मे नाम और रूप का अस्तित्व है। इस माया से छुटकारा पाना ही मानो आत्मा और परमात्मा की फिर एक बार एक ही सत्ता स्थापित करना है। आत्मा और परमात्मा एक ही शक्ति के दो भाग हैं जिन्हे माया के परदे ने अलग कर दिया है। जब उपासना या ज्ञानार्जन पर माया नष्ट हो जाती है तब दोनो भागो का पुन. एकीकरण हो जाता है। कबीर इसी बात को इस प्रकार लिखते हैं :—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथ्यो गियानी ॥

एक घडा जल मे तैर रहा है। उस घड़े मे थोड़ा पानी भी है। घडे के भीतर जो पानी है वह घड़े के बाहर के पानी से किसी प्रकार भी भिन्न नही है। किंतु वह इसलिए अलग है क्योकि घडे की पतली चादर उन दोनो अशो को मिलने नही देती, जिस प्रकार माया ब्रह्म के दो स्वरूपो को अलग रखती है। कुभ के फूटने पर पानी के दोनो भाग मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार माया के आवरण के हटने पर आत्मा और परमात्मा का सयोग हो जाता है। यही अद्वैतवाद कबीर के रहस्यवाद का आधार है।

दूसरा आधार है मुसलमानो का सूफीमत। हम यह निश्चय रूप से नही कह सकते कि उन्होंने सूफीमत के प्रतिपादन के लिए ही अपने 'शब्द' कहे हैं पर यह निश्चय है कि मुसलमानी सस्कारो के कारण उनके विचारो मे सूफीमत का तत्त्व मिलता है।

सूफीमत

ईसा की आठवी शताब्दी मे इस्लाम धर्म मे एक विप्लव हुआ। राजनीतिक नही, धार्मिक। पुराने विचारो के कट्टर मुसलमानो का एक विरोधी दल उठ खडा हुआ। यह फारस का एक छोटा-सा संप्रदाय था। इसने परपरागत मुस्लिम आदर्शों का ऐसा घोर विरोध किया कि कुछ समय तक इस्लाम के धार्मिक क्षेत्र मे उथल-पुथल मच गई। इस संप्रदाय ने

संसार के सारे सुखों को तिलाजलि-सी दे दी । ससार के सारे ऐश्वर्यों और सुखों को स्वप्न की भाँति भुला दिया । बाह्य शृगार और बनावटी बातो से उसे एक बार ही घृणा हो गई । उसने एक स्वतत्र मत की स्थापना की । सादगी और सरलता ही उसके बाह्य जीवन की अभिरुचि बन गई । कीमती कपडे और स्वादिष्ट भोजन से उसे घृणा हो गई । सरलता और सादगी का आदर्श अपने सम्मुख रख कर उस सप्रदाय ने अपने शरीर के वस्त्र बहुत ही साधारण रक्खे । वे सफेद ऊन के साधारण वस्त्र थे । फारसी में सफेद ऊन को 'सूफ' कहते हैं । इसी शब्दार्थ के अनुसार सफेद ऊन के वस्त्र पहिनने वाले व्यक्ति 'सूफी' कहलाने लगे । उनके परिधान के कारण ही उनके नाम की सृष्टि हुई ।

सूफीमत में भी यद्यपि बदे और खुदा का एकीकरण हो सकता है पर उसमें माया का कोई विशेष स्थान नही है । जिस प्रकार एक पथिक अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंचने के लिए प्रस्थान करता है, मार्ग मे उसे कुछ स्थल पार करने पडते हैं, उसी प्रकार सूफीमत मे आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्यग्र होकर अग्रसर होती है । परमात्मा से मिलने के पहले आत्मा को चार दशाएँ पार करनी पडती है :—

१. शरियत (شریعت)
२. तरीकत (طریقت)
३. हकीक़त (حقیقت)
४ मारिफत (معرفت)

इस मारिफत मे जाकर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है । वहाँ आत्मा स्वयं 'फना' (فنا) होकर 'बका' (بقا) के लिए प्रस्तुत होती है । इस प्रकार आत्मा में परमात्मा का अनुभव होने लगता है और 'अनलहक' (انا الحق) सार्थक हो जाता है । अपने अनुराग में चूर होकर आत्मा यह आध्यात्मिक यात्रा पार कर ईश्वर से मिलती है और तब दोनों शराब-पानी की तरह मिल जाते हैं ।

दूसरी बात यह है कि सूफीमत मे प्रेम का अश बहुत महत्त्वपूर्ण है ।

प्रेम ही कर्म है, और प्रेम ही धर्म है। सूफीमत मानो स्थान-स्थान पर प्रेम के आवरण से ढका हुआ है। उस सूफीमत के बाग़ को प्रेम के फुहारे सदा सींचते रहते हैं। निस्वार्थ प्रेम ही सूफीमत का प्राण है। फारसी के जितने सूफी कवि हैं वे कविता मे प्रेम के अतिरिक्त कुछ जानते ही नही हैं। प्रमाणस्वरूप जलालुद्दीन रूमी और जामी के बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

प्रेम के साथ इस सूफीमत मे प्रेम का नशा भी प्रधान है। उसमे नशे के खुमार का और भी महत्त्वपूर्ण अंश है। उसी नशे के खुमार की बदौलत ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है। फिर संसार की कोई स्मृति नही रहती, शरीर का कुछ ध्यान नही रहता। केवल परमात्मा की "लौ" ही सब कुछ होती है। कबीर ने भी एक स्थान पर लिखा है :—

हरि रस पीया जानिये, कबहुँ न जाय खुमार।
मैं मंता घूमत फिरै, नाहीं तन की सार॥

एक बात और है। सूफीमत मे ईश्वर की भावना स्त्री रूप मे मानी गई है। वहाँ भक्त पुरुष बन कर ईश्वर रूपी स्त्री की प्रसन्नता के लिये सौ जान से निसार होता है, उसके हाथ की शराब पीने को तरसता है, उसके द्वार पर जाकर प्रेम की भीख माँगता है। ईश्वर एक दैवी स्त्री के रूप मे उसके सामने उपस्थित होता है। उदाहरणार्थ रूमी की एक कविता का भावार्थ यह है —

प्रियतमा के प्रति प्रेमी की पुकार

मेरे विचारो के संघर्ष से मेरी कमर टूट गई है।
ओ प्रियतमे, आओ और करुणा से मेरे सिर का स्पर्श करो।
मेरे सिर से तुम्हारी हथेली का स्पर्श मुझे शांति देता है।
तुम्हारा हाथ ही तुम्हारी उदारता का सूचक है।
मेरे सिर से अपनी छाया को दूर मत करो।

मैं सतप्त हूँ, सतप्त हूँ। सतप्त हूँ।

....।

ऐ, मेरा जीवन ले लो,

तुम जीवन-स्रोत हो क्योकि तुम्हारे विरह मे मैं अपने जीवन से क्लान्त हूँ। मैं वह प्रेमी हूँ जो प्रेम के पागलपन मे निपुण है।

मैं विवेक और बुद्धि से हैरान हूँ।

अन्त मे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अद्वैतवाद मे आत्मा और परमात्मा के एकीकरण होने मे चिंतन और माया का बडा महत्त्वपूर्ण भाग है और सूफीमत मे उसी के लिए हृदय की चार अवस्थाओ और प्रेम का। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि कबीर का रहस्यवाद हिन्दुओं के अद्वैतवाद और मुसलमानो के सूफीमत पर आश्रित है। इसलिए कबीर ने अपने रहस्यवाद के स्पष्टीकरण मे दोनो की—अद्वैतवाद और सूफीमत की—बातें ली हैं। फलत. उन्होने अद्वैतवाद से माया और चिंतन तथा सूफीमत से प्रेम लेकर अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है। सूफीमत के स्त्री-रूप भगवान की भावना ने अद्वैतवाद के पुरुष-रूप भगवान के सामने सिर झुका लिया है। इस प्रकार कबीर ने दोनो सिद्धातो से अपने काम के उपयुक्त तत्त्व लेकर शेष बातो पर ध्यान ही नही दिया है।

इस विषय मे कबीर की कविता का उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

परमात्मा की अनुभूति के लिए आत्मा प्रेम से परिपूर्ण होकर अग्रसर होती है। वह सासारिकता का बहिष्कार कर दिव्य और अलौकिक वातावरण मे उठती है। वह उस ईश्वर के समीप पहुँच जाती है जो इस विश्व का निर्माणकर्त्ता है। उस ईश्वर का नाम है—सत्पुरुष। सत्पुरुष के संसर्ग से वह आत्मा उस दैवी शक्ति के कारण हतबुद्धि सी हो जाती है। वह समझ ही नहीं सकती कि परमात्मा क्या है, कैसा है! वह अवाक् रह जाती है। वह ईश्वरीय शक्ति अनुभव करती है पर उसे प्रकट नही कर सकती। इसीलिए 'गंगे के गुड' के समान वह स्वयं तो परमात्मा-

नुभव करती है पर प्रकट मे कुछ भी नही कह सकती । कुछ समय के बाद जब उसमें कुछ बुद्धि आती है और कुछ कुछ जबान खुलती है तो वह एकदम से पुकार उठती है —

कहहि कबीर पुकारि के, अद्भुत कहिए ताहि ।

उस समय आत्मा मे इतनी शक्ति ही नही होती कि वह परमात्मा की ज्योति का निरूपण करने मे समर्थ हो । वह आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा की ओर देखती रहती है । अत मे बडी कठिनता से कहती है —

वर्णहुं कौन रूप औ रेखा,
दोसर कौन आहि जो देखा ।
ओंकार आदि नहिं वेदा,
ताकर कहहु कौन कुल भेदा ॥

× × ×

नहिं जल, नहिं थल, नहिं थिर पवना
को धरै नाम हुकुम को बरना
नहिं कछु होति दिवस औ राती ।
ताकर कहुँ कौन कुल जाती ॥
शून्य सहज्ज मन स्मृति ते प्रगट भई एक जोति ।
ता पुरुष की बलिहारी, निरालंब जे होति ॥

रमैनी ६

यहाँ आत्मा सत्पुरुष का रूप देख कर मुग्ध हो जाती है । धीरे-धीरे आत्मा परमात्मा की ज्योति मे लीन होकर विश्व की विशालता का अनुभव करती है और उस समय वह आनंदातिरेक से परमात्मा के गुण वर्णन करने लगती है :—

जाहि कारण शिव अजहुँ वियोगी ।
अंग विभूति लाइ भे जोगी ॥

शेष सहज सुख पार न पावैं।
सो अब खसम सहित समुझावैं॥

इतना सब कहने पर भी अन्त मे यही शेष रह जाता है कि—

तहिया गुप्त स्थूल नहि काया।
ताके शोक न ताके माया॥
कमल पत्र तरंग इक माहीं।
संग ही रहै लिप्त पै नाहीं॥
आस ओस अंडन मे रहई।
अगनित अंडन कोई कहई॥
निराधार आधार लै जानी।
राम नाम लै उचरै बानी॥

× ×

भर्मक बाँधल ई जागत, कोइ न करै बिचार।
हरि की भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुआ संसार॥

रमैनी ७४

इसी प्रकार ससार के लोगो को उपदेश देती हुई आत्मा कहती है :—

जिन यह चित्र बनाइयां, साँचो सो सूरति हार।
कहहि कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहि लेहिं बिचार॥

इस प्रेम की स्थिति बढते-बढते यहाँ तक पहुँचती है कि आत्मा स्वयं परमात्मा की स्त्री बनकर उसका एक भाग बन जाती है। यही इस प्रेम की उत्कृष्ट स्थिति है।

एक अंड उंकार ते, सब जग भया पसार।
कहहि कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भतार॥

रमैनी २७

और अन्त मे आत्मा कहती है :—

हरि मोर पीव माई, हरि मोर पीव।
हरि बिन रहि न सकै मोर जीव॥
हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया।
राम बडे मैं छुटक लहुरिया॥

शब्द ११७

और

जो पै पिय के मन नहिं भाये।
तौ का परोसिन के दुलराये॥
का चूरा पाइल झमकाएँ।
कहा भयो बिछुआ ठमकाएँ॥
का काजल सेंदुर के दीये।
सोलह सिंगार कहा भयो कीये॥
अंजन मंजन करै ठगौरी।
का पचि मरै निगोडी बौरी।
जो पै पतिव्रता है नारी॥
कैसे ही रहौ सो पियहिं पियारी॥
तन मन जोबन सौंपि सरीरा।
ताहि सुहागिन कहै कबीरा॥

इस रहस्यवाद की चरम सीमा उस समय पहुँच जाती है जब आत्मा पूर्ण रूप से परमात्मा मे सबद्ध हो जाती है, दोनो मे कोई अतर नहीं रह जाता। यहाँ आत्मा अपनी आकाक्षा पूर्ण कर लेती है और फिर आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है। कबीर उस स्थिति का अनुभव करते हुए कहते हैं :—

हरि मरि हैं तो हम हूँ मरि हैं।
हरि न मरै हम काहे को मरि हैं॥

आत्मा और परमात्मा मे इस प्रकार मिलन हो जाता है कि एक के विनाश से दूसरे का विनाश और एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व

सार्थक होता हैं। फारसी मे इसी विचार का एक बडा सुन्दर अवतरण है। निकल्सन ने उसका अग्रेजी मे अनुवाद कर दिया है, उसका तात्पर्य यही है :—

जब वह (मेरा जीवन तत्त्व) 'दूसरा' नही कहलाता तो मेरे गुण उसके (प्रियतमा) के गुण हैं और जब हम दोनो एक हैं, तो उसका बाह्य रूप मेरा है। यदि वह बुलाई जाय तो मैं उत्तर देता हूँ और यदि मैं बुलाया जाता हूँ तो वह मेरे बुलाने वाले को उत्तर देती है और कह उठती है 'लब्बयक' (जो आज्ञा) । वह बोलती है मानो मैं ही वार्तालाप कर रहा हूँ, उसी प्रकार यदि मैं कोई कथा कहता हूँ तो मानो वही उसे कहती है। हम लोगो के बीच मे से मध्यम पुरुष सर्वनाम ही उठ गया है। और उसके न रहने से मैं विभिन्न करने वाले समाज से ऊपर उठ गया हूँ।[१]

इस चरम सीमा को पाना ही कबीर के उपदेश का तत्त्व था। उनकी

---

[१]When in (essence) is not called two my attributes are hers, and since we are one her outward aspect is mine

If she be called, 'tis I who answer, and I am summoned she answers him who calls me and cries labbayak (At thy Service.)

And if she speak, 'tis I who converse. Like wise if I tell a story, 'its she that tells it.'

The pronoun of second person has gone out of use between us, and by its removal I am raised above the sect who separate.

दि आइडिया ऑव् पर्सोनेलिटी इन सूफीज्म, पृष्ठ २०

उल्टवाँसियो मे इसी आत्मा और परमात्मा का रहस्य भरा हुआ है ।

इस प्रकार रहस्यवाद की पूरी अभिव्यक्ति हम कबीर की कविता मे पाते हैं ।

अब हमे कबीर के रूपको पर विचार करना है ।

जो रहस्यवादी अपने भावो को थोडा बहुत प्रकट कर सके हैं उनके विषय मे एक बात और विचारणीय है । वह यह कि ये रहस्यवादी स्वभावत॰ अपने विचारो को किसी रूपक मे प्रकट करते हैं । वे स्पष्ट रूप से अपने भाव कहने मे असमर्थ हो जाते हैं क्योकि अनुभूत भाव-सौंदर्य इतना अधिक होता है कि वे साधारण शब्दो मे उसे व्यक्त नही कर सकते । उनका भावोन्माद इतना अधिक होता है कि बोलचाल के साधारण शब्द उनका बोझ नही सम्हाल सकते । इसीलिए उन्हे अपने भावो को प्रकट करने के लिये रूपको की शरण लेनी पडती है । अँग्रेजी मे भी जो रहस्यवादी कवि हो गए हैं उन्होंने भी इस रूपक भाषा[१] को अपनाया है । यह रूपक उन रहस्यवादियो के हृदय मे इस प्रकार बिना श्रम के चला जाता है जिस प्रकार किसी ढालू जमीन पर जल की धारा । फल यह होता है कि रहस्यवादी स्वय भूल जाता है कि जो कुछ वह भावोन्माद मे, आनदोद्रेक मे कह गया वह लोगो को किस प्रकार समझावे, इसीलिए समालोचकगण चक्कर मे पड़ जाते हैं कि अमुक रूपक के क्या अर्थ हैं ? उस पद का क्या अर्थ हो सकता है । यदि समालोचक वास्तव मे कवि के हृदय की दशा जान जावें तो वे कवि को पागल कहेगे और न प्रलापी ।

कबीर का रहस्यवाद बहुत गहरा है । उन्होने ससार के परे अनंत शक्ति का परिचय पाकर उसे अपने को सबद्ध कर लिया है । उसी को उन्होंने अनेक रूपको मे प्रदर्शित किया है । एक रूपक लीजिए —

---

[१] The Language of Symbols

हरि मोर रहटा, मैं रतन पिउरिया ।
हरि का नाम ले कतति बहुरिया ॥
छौ मास तागा बरस दिन कुकरी ।
लोग कहैं भल कातल बपुरी ॥
कहहि कबीर सूत भल काता ।
चरखा न होय मुक्ति कर दाता ॥

देखने से अर्थ सरल ज्ञात होगा, पर वास्तव मे वह कितनी गहरी भावनाओं से ओत-प्रोत है यह विचारणीय है । रूपक भी चरखे से लिया गया है, इसलिए कि कबीर जुलाहे थे, ताना-बाना और चरखा उनकी आँखो के सामने सदैव झूलता होगा । उनकी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति पर किसी को आश्चर्य न होगा । अब यदि चरखे का रूपक उस पद से हटा लिया जाय तो विचार की सारी शक्ति ढीली पड जायगी और भावो का सौंदर्य बिखर जायगा । उसका यह कारण है कि रूपक बिलकुल स्वाभाविक है । कबीर को चलते-फिरते यह रूपक सूझ गया होगा । स्वाभाविकता ही सौंदर्य है । अतएव इस स्वाभाविक रूपक को हटाना सौंदर्य का नाश करना है । यहॉ यह स्पष्ट है कि आत्मा और परमात्मा का सबध चित्रित करने मे रूपक का सहारा कितना महत्त्व रखता है । रहस्यवादियो ने तो यहॉ तक किया है कि यदि उन्हे अपने भावो के उपयुक्त शब्द नही मिले तो उन्होने नये गढ डाले हैं । मकडी के जाले के समान उनकी कविता विस्तृत है, उससे नये शब्द और भाव उसी प्रकार निर्मित किए गए हैं जिस प्रकार एक मकडी अपनी इच्छा-नुसार धागे बनाती और मिटाती है । कबीर के उसी रूपक का परिवर्धित उदाहरण लीजिए—

जौ चरखा जरि जाय, बढ़ैया नामरै ।
मैं कातौं सूत हजार, चरखुला जिन जरै ॥
बाबा, मोर ब्याह कराव, अच्छा बरहि तकाय ।
जो लौं अच्छा बर न मिलै, तौ लौं तुमहि बिहाय ॥

प्रथम नगर पहुँचते, परिगो सोच संताप ।
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप ।
समधी के घर समधी आये, आये बहू के भाय ।
गोडे चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढाय ।
देवलोक मर जायँगे, एक न मरै बढ़ाय ।
यह मन रञ्जन कारणे चरखा दियो दिढ़ाय ।
कहहि कबीर सुनो हो संतो चरखा लखै जो कोय ।
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय ।

बीजक शब्द ६८

इसका साधारण अर्थ यही है :—

यदि चरखा जल भी जाय तो उसका बनाने वाला बढ़ई नही मर सकता, पर यदि मेरा चरखा न जलेगा तो मैं उससे हजार सूत कातूँगी। बाबा, अच्छा वर खोज कर मेरा विवाह करा दीजिए, और जब तक अच्छा वर न मिले तब तक आप ही मुझसे विवाह कर लीजिए। नगर मे प्रथम बार पहुँचते ही शोक और दुःख सिर आ पड़े। एक आश्चर्य हमने देखा है कि पिता के साथ पुत्री ने अपना विवाह कर लिया। फलत एक समधी के घर दूसरे समधी आये और बहू के यहाँ भाई। चूल्हा में गोडा देकर (चरखे के विविध भागो को सटा कर) चरखा और मजबूत कर दिया। स्वर्ग मे रहने वाले सभी देव मर जायँगे पर वह बढ़ई नही मर सकता जिसने मन को प्रसन्न रखने के लिए चरखे को और सुदृढ़ कर दिया है। कबीर कहते हैं, ओ सतो सुनो, जो कोई इस चरखे का वास्तविक रूप देखता है, जिसने इस चरखे को एक बार देख लिया उसका इस ससार मे फिर आवागमन नही होता, वह ससार के बन्धनो से सदैव के लिए छूट जाता है।

सरसरी दृष्टि से देखने पर तो यह ज्ञात होता है कि सारे अवतरण मे भाव-साम्य ही नहीं है। एक विचार है, वह समाप्त होने ही नहीं पाया और दूसरा विचार आ गया। विचार की गति अनेक स्थलो पर

टूट गई है। भावो का विकास अव्यवस्थित रूप से हुआ है, पर यदि रूपक के वातावरण से निकल कर—रूपक को एक-मात्र भावो के प्रकाशन का सहारा मान कर हम उस अवतरण के अन्तरग अर्थ को देखे तो भाव-सौदर्य हमे उसी समय ज्ञात हो जायगा। विचार की सजावट आँखो के सामने आ जायगी और हमे कवि का सदेश पढ़ते ही मिल जायगा।

रूपको के अव्यवस्थित होने के कारण यह हो सकता है कि जिस समय कवि एकाग्र होकर दिव्य शक्ति का सौन्दर्य देखता है, ससार से बहुत ऊपर उठ कर देवलोक मे विहार करता है, उसी समय वह उस आनद और भाव उन्माद को नही सँभाल सकता। उस मस्ती से दीवाना होकर वह भिन्न-भिन्न रीतियो से अपने भावो का प्रदर्शन करता है। शब्द यदि उसे मिलते भी हैं तो उसके विह्वल आह्लाद से वे बिखर जाते हैं और कवि का शब्द-समूह बूढे मनुष्य के निर्बल अगो के समान शिथिल पड जाता है। यही कारण है कि भाषा की बागडोर उसके हाथ से निकल जाती है और वह असहाय होकर बिखरे हुए शब्दो मे, अनियंत्रित वाग्धाराओ मे, टूटे-फूटे पदो मे अपने उन्मत्त भावो का प्रकाशन करता है। यही कारण है कि उसके रूपक कभी उन्मत्त होते हैं, कभी शिथिल और कभी टूटे-फूटे। अब रूपक का आवरण हटा कर जरा इस पद का सौंदर्य देखिए.—

"यदि काल-चक्र (चरखा) नष्ट भी हो जाय तो उसका निर्माणकर्ता अनंत शक्ति सपन्न ईश्वर कभी नष्ट नहीं हो सकता। यदि काल-चक्र न चले, न नष्ट हो, तो मैं सहस्रो कर्म कर सकता हूँ। हे गुरु, आप ईश्वर का परिचय पाकर उनसे मेरा सबध करा दीजिए और जब तक ईश्वर न मिले तब तक आप ही मुझे अपने सरक्षण मे रखिए। (जौ लौं अच्छा वर न मिलै तौ लौं तुमहि बिहाय।) आप से प्रथम बार ही दीक्षित होने पर मुझे इस बात की चिन्ता होने लगी कि मैं किस प्रकार आपकी आज्ञा पालन करने में समर्थ हो सकूगा। पर मुझे आश्चर्य हुआ कि आपके

प्रभाव से मेरी आत्मा अपने उत्पन्न करने वाले परम पिता ब्रह्म मे जाकर सम्बद्ध हो गई। फल यह हुआ कि मेरे हृदय में ईश्वर की व्यापकता और भी बढ गई। समधी से समधी की भेंट हुई, आत्मा के पिता ब्रह्म से गुरु के पिता ब्रह्म की भेंट हुई, अर्थात् ईश्वर की अनुभूति दुगुनी हो गई। वाणी रूपी बहू के पास पाडित्य-रूपी भाई आया अर्थात् वाणी में विद्वत्ता और पाडित्य आ गया। उस समय कर्मकाडो से सज्जित काल-चक्र की दृढ़ता और भी स्पष्ट जान पडने लगी। सारे विश्व को एक नजर से देख लेने पर इतना अनुभव हो गया कि विश्व की सभी वस्तुएँ मर्त्य हो सकती हैं पर वह अनत शक्ति जिसने काल-चक्र का निर्माण किया है कभी नष्ट नही हो सकती। उसने हृदय को सुचारु रूप से रखने के लिए इस काल-चक्र को और भी सुदृढ़ कर दिया। कबीर कहते हैं कि जिसने एक बार इस काल-चक्र के मर्म को समझ लिया वह कभी ससार के बन्धनो से बद्ध नहीं हो सकता। उसे ईश्वर की ऐसी अनुभूति हो जाती है कि उसके जन्म-मृत्यु का बन्धन नष्ट हो जाता है।

रूपक का बँधान कितना सुन्दर है! अब हमे यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि रूपक का सहारा लेकर रहस्यवादी किस प्रकार अपने भावो को प्रकट करते हैं। एक तो वे अपनी अनुभूति प्रकट नहीं कर सकते और जो कुछ वे कर सकते है ऐसे ही रूपकों के सहारे। डाक्टर फ्रायड का तो मत ही यही है कि आत्मा की भाषा रूपको में ही प्रकट होती है।

और वे रूपक भी कैसे होते है! उनके सामने ससार की वस्तुएँ गुब्बारे की भाँति है जिससे अनत शक्ति गैस भरी हुई है। यही गुब्बारे कवि की कल्पना के झोंके से यहाँ वहाँ उडते फिरते हैं। कवि की कल्पना भी इस समय एक घड़ी के पेडुलम का रूप धारण करती है। वह पृथ्वी और आकाश इन दो क्षेत्रो मे बारो-बारी से घूमा करती है। आज ईश्वर की अनंत विभूति है तो कल ससार की वस्तुओ मे उस अनुभूति का प्रदर्शन है। सोमवार को कवि ने ईश्वर की अनंत शक्तियो मे अपने को मिला दिया था तो मंगलवार को वह कवि ससार मे आकर उस दिव्य

अनुभूति को लोगो के सामने बिखरा देता है।

कबीर के रूपको के व्यवहार मे एक बात और है। वह यह कि कबीर के रूपक स्वाभाविक होने पर भी जटिल हैं। यद्यपि उनके रूपक पुष्प की भाँति उत्पन्न होते हैं और उन्ही की भाँति विकसित भी, पर उनमे दुरूहता के काँटे अवश्य होते हैं। शायद कबीर जटिल होना भी चाहते थे। यद्यपि वे लोगो के सामने अपने विचार प्रकट करना चाहते थे तथापि वे यह भी चाहते थे कि लोग उनके पदो को समझने की कोशिश करें। सोना खान के भीतर ही मिलता है, ऊपर नही। यदि सोना ऊपर ही बिखरा हुआ मिल जाय तो फिर उसका महत्त्व ही क्या रहा! उसी प्रकार कबीर के दिव्य वचन रूपको के अन्दर छिपे रहते हैं। जो जिज्ञासु होगे वे स्वय ही परिश्रम कर समझ लेगे अन्यथा मूर्खों के लिए ऐसे वचनो का उपयोग ही क्या हो सकता है! एक बार अग्रेजी के रहस्यवादी कवि ब्लेक से भी एक महाशय ने प्रश्न किया कि उनके विचारो का स्पष्टीकरण करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता है। इस पर उन्होने कहा, "जो वस्तु वास्तव मे उत्कृष्ट है वह निर्बल व्यक्ति के लिए सदैव अगम्य होगी और जो वस्तु किसी मूर्ख को स्पष्ट की जा सकती है वह वास्तव मे किसी काम की नही। प्राचीन समय के विद्वानो ने उसी ज्ञान को उपदेशयुक्त समझा था जो बिलकुल स्पष्ट नही था, क्योकि ऐसा ज्ञान कार्य करने की शक्ति को उत्तेजित करता है। ऐसे विद्वानो मे मैं मूसा, सालोमन, ईसप, होमर और प्लेटो का नाम ले सकता हूँ।

इसी विचार के वशीभूत होकर कबीर ने शायद कहा था

कहै कबीर सुनो हो संतो, यह पद करो निबेरा।

अब हम रहस्यवाद की कुछ विशेषताओ पर प्रकाश डालना चाहते हैं। ये विशेषताएँ रहस्यवाद के विषय में अत्यधिक विवेचना कर यह बतला सकती हैं कि अमुक रहस्यवादी अपनी कल्पना के ज्ञान मे कहाँ तक ऊँचा उठ सका है। इन्ही विशेषताओ का स्पष्टीकरण हम इस प्रकार करेंगे।

रहस्यवाद की विशेषताएँ

रहस्यवाद की पहली विशेषता यह है कि उसमे प्रेम की धारा अबोध रूप से बहना चाहिए। रहस्यवादी अपनी अनुभूति मे वह तत्व पा जावे जिसमे उसके सासारिक अलौकिक जीवन का सामजस्य हो। प्रेम का मतलब हृदय की साधारण-सी भावुक स्थिति न समझी जाय वरन् वह अन्तरग और सूक्ष्म प्रवृत्ति हो जिससे अतर्जगत अपने सभी अगो का मेल बहिजगत से कर सके। प्रेम हृदय की वह घनीभूत भावना हो जिससे जीवन का विकास सदैव उन्नति की ओर हो, चाहे वह प्रेम एक बुद्धिमान् के हृदय मे निवास करे अथवा एक मूर्ख के हृदय मे। किन्तु दोनो स्थानो मे स्थित उस प्रेम की शक्ति मे कोई अतर न हो। प्रेम का सबध ज्ञान से नही है। वह हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नही। अतएव एक साधारण से साधारण आदमी उत्कृष्ट प्रेम कर सकता है और एक विद्वान प्रेम की परिभाषा से भी अनभिज्ञ रह सकता है। इसलिए प्रेम का स्थान ज्ञान से बहुत ऊँचा है। रहस्यवाद मे उतनी ज्ञान की आवश्यकता नही है जितनी प्रेम की। अत. कहा गया है कि ईश्वर ज्ञान से नही जाना जा सकता, प्रेम से वश मे किया जा सकता है। जब तक रहस्यवादी के हृदय में प्रेम नही है तब तक वह अनंत शक्ति की ओर एकाग्र भी नही हो सकता। वह उडते हुए बादल की भाँति कभी यहाँ भटकेगा, कभी वहाँ। उसमे स्थिरता नही आ सकती। इसलिए ऐसे प्रेम की उत्पत्ति होनी चाहिए जिसमे बधन नही, बाधा नही, जो कलुषित और बनावटी नही। उस प्रेम के आगे फिर किसी ज्ञान की आवश्यकता नही है :—

गुरु प्रेम का अंक पढ़ाय दिया,
अब पढ़ने को कछु नहि बाकी। —कबीर

इस प्रेम के सहारे रहस्यवादी ईश्वर की अभिव्यक्ति पाते हैं। जब ऐसा प्रेम होता है तभी रहस्यवादी मतवाला हो जाता है कबीर कहते हैं :—

आठहूँ पहर मतवाला लागी रहै,
आठहूँ पहर की छाक पीवै,
आठहूँ पहर मस्तानो माता रहै,
ब्रह्म की छौल में साध जीवै,
साँच ही कहतु और साँचहि गहतु है,
काँच को त्याग करि साँच लागा,
कहै कब्बीर यों साध निर्भय हुआ,
जनम और मरन का भर्म भागा।

और उस समय उस प्रेम मे कौन कौन से दृश्य दिखलाई पडते हैं ?

गगन की गुफा तहाँ गैब का चादना
उदय और अस्त का नाव नाहीं।
दिवस और रैन तहाँ नेक नहिं पाइए,
प्रेम औ परकास के सिंध माही ॥
सदा आनंद दुख दंदु व्यापै नहीं,
पूरनानद भर पूर देखा।
भर्म और भ्राति तहाँ नेक आवै नहीं,
कहै कब्बीर रस एक पेखा ॥

प्रेम के इस महत्त्व की उपेक्षा कौन कर सकता है ! इसीलिए तो रहस्यवाद के इस प्रेम को अबुल अल्हाह ने इस प्रकार कहा है :—

[1]चर्च, मन्दिर या काबा का पत्थर, कुरान, बाइबिल या शहीद की अस्थियाँ, ये सब और इनसे भी अधिक (वस्तुएँ) मेरे हृदय को सह्य हैं क्योकि मेरा धर्म केवल प्रेम है।

---

[1] A church, a temple, or a Kaba stone,
Kuran or Bible or Martyr's bone
All these and more my heart can tolerate
Since my religion is love along.

प्रोफेसर इनायतखाँ रचित 'सूफी मैसेज' पुस्तक का एक अवतरण लेकर हम इसे और भी स्पष्ट करना चाहते है —

सूफी अपने सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिये प्रेम और भक्ति का मार्ग ग्रहण करते हैं क्योकि वह प्रेम-भावना ही है जो मनुष्य को एक जगत से भिन्न जगत मे लाई है और यही वह शक्ति है जो फिर उसे भिन्न जगत से एक जगत मे ले जा सकती है।[१]

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम का किसी स्वार्थ से रहित होना अधिक आवश्यक है, अन्यथा प्रेम का महत्व कम हो जाता है। अतएव रहस्यवादी मे निस्वार्थ प्रेम का होना अत्यन्त आवश्यक है।

रहस्यवाद की दूसरी विशेषता यह है कि उसमे आध्यात्मिक तत्त्व हो। संसार की नीरस वस्तुओ से बहुत दूर एक ऐसे वातावरण मे रहस्वाद रूप ग्रहण करता है, जिससे सदैव नई नई उमगो की सृष्टि होती है। उस दिव्य वातावरण मे कोई भी वस्तु पुरानी नही दीखती। रहस्यवादी के शरीर में प्रत्येक समय ऐसी स्फूर्ति रहती है जिससे वह अनत शक्ति की अनुभूति मे मग्न रहता है और सासारिकता से बहुत दूर किसी ऐसे स्थान मे निवास करता है जहाँ न तो मृत्यु का भय है, न रोगो का अस्तित्व है और न शोक का ही प्रसार है। उस दिव्य मिठास मे सभी वस्तुएँ एकरस मालूम पडती हैं और कवि अपने मे उस स्फूर्ति का अनुभव करता है जिससे ईश्वरी सबघ की अभिव्यक्ति होती रहती है।

[१]Sufis take the course of love and devotion to accompltsh their highest aim because it is love which has brought man from the world of Unity to the world of Variety and the same force again can take him to the world of Unity from that of variety

—Sufi Massage

उस आध्यात्मिक दशा मे रहस्यवाद अपने को ईश्वर से मिला देता है और उस अलौकिक आनद मे मस्त हो जाता है जिसमे ससार के सूखेपन का पता ही नही लगता। उस आध्यात्मिक तत्त्व मे अनत से मिलाप की प्रधानता रहती है। आत्मा और परमात्मा दोनो की अभिन्नता स्पष्ट प्रकट होती है। प्रसिद्ध फारसी कवि जामी ने उसी आध्यात्मिक तत्त्व मे अपना काव्य-कौशल दिखलाया है।

अल-हल्लाज मसूर की भावना भी इसी प्रकार है :—

तेरी आत्मा मेरी आत्मा से मिल गई है जैसे स्वच्छ जल से शराब। जब कोई वस्तु तुझे स्पर्श करती है तो मानो वह मुझे स्पर्श करती है। देख न, सभी प्रकार से तू 'मैं' है।'

कबीर ने निम्नलिखित पद मे इसी आध्यात्मिक तत्त्व का कितना सुन्दर विवेचन किया है '—

'योगिया की नगरी बसै मत कोई
जो रे बसै सो योगिया होई,
वही योगिया के उल्टा ज्ञाना
कारा चोला नाहीं माना,
प्रकट सो कंथा गुप्ता धारी
तामें मूल संजीवनी भारी,
वा योगिया की युक्ति जो बूझै
नाम रमै सो त्रिभुवन सूझै,
अमृत बेली छुन छुन पीवे
कहै कबीर सो युग युग जीवै।

'The Spirit is mingled in my spirit even as wine is mingled with pure water. When any thing touches. Thee, it touches me. Lo, in every case Thou art I.

' दि आइडिया अव् पर्सोनैलिटी इन सूफीज्म, पृष्ठ ३०

रहस्यवाद की तीसरी विशेषता यह है कि वह सदैव जागृत रहे, कभी सुप्त न हो। उसमे सदैव ऐसी शक्ति रहे जिससे रहस्यवादी को दिव्य और अलौकिक झाँकी दीखती रहे। यदि रहस्यवादी की शक्ति अपूर्ण रही तो रहस्यवादी अपने ऊँचे आसन से गिर कर यहाँ वहाँ भटकने लगता है और ईश्वर की अनुभूति को स्वप्न के समान समझने लगता है। रहस्यवाद तो ऐसा हो कि एक बार ही रहस्यवादी यह शक्ति प्राप्त कर ले कि वह निरतर ईश्वर मे लीन हो जाय। जब उसमे एक बार वह क्षमता आ गई कि वह ईश्वरीय विभूतियो को स्पर्श कर अपने मे सबद्ध कर ले तब यह क्यो होना चाहिये कि कभी कभी वह उन शक्तियो से हीन रहे? सूफी लोग सोचते हैं कि रहस्यवादी की यह दिव्य परिस्थिति सदैव नहीं रहती। उसे ईश्वर की अनुभूति तभी होती है जब उसे 'हाल' आते हैं। जीवन के अन्य समय मे वह साधारण मनुष्य रहता है। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। जब रहस्यवादी एक बार दिव्य संसार मे प्रवेश कर पाता है, जब वह अपने प्रेम के कारण अनत शक्ति से मिलाप कर लेता है, उसकी सारी बाते जान जाता है तब फिर यह कैसे सभव हो सकता है कि वह कभी कभी उस दिव्य लोक से निकाल दिया जाय, अथवा दिव्य सौंदर्य का अवलोकन रोकने के लिए उसकी आँखो पर पट्टी बाँध दी जाय। रहस्यवादी को जहाँ एक बार दिव्य लोक मे स्थान प्राप्त हुआ कि वह सदैव के लिए अपने को ईश्वर मे मिला लेता है और कभी उससे अलग होने की कल्पना तक नही करता।

रहस्यवाद की चौथी विशेषता यह है कि अनत की ओर केवल भावना ही की प्रगति न हो वरन् सपूर्ण हृदय की आकाक्षा उस ओर आकृष्ट हो जाय। यदि केवल भावना ही ऊपर उठी और हृदय अन्य बातो मे सलग्न रहा तो रहस्यवाद की कोई विशेषता ही नही रही। अडरहिल रचित मिस्टिसिज्म मे इसी विषय पर एक बडा सुन्दर अवतरण है।

मेगडेवर्ग की मेक्थिल्ड को एक दर्शन हुआ। उसका वर्णन इस

प्रकार है —

आत्मा ने अपनी भावना से कहा :—

"शीघ्र ही जाओ, और देखो कि मेरे प्रियतम कहाँ हैं ! उनसे जाकर कहो कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ ।"

भावना चली, क्योंकि वह स्वभावत ही शीघ्रगामिनी है और स्वर्ग में पहुँच कर बोली —

"प्रभो, द्वार खोलिए, और मुझे भीतर आने दीजिये ।" उस स्वर्ग के स्वामी ने कहा, "इस उत्सुकता का क्या तात्पर्य है !" भावना ने उत्तर दिया, भगवन् मैं आपसे यह कहना चाहती हूँ कि मेरी स्वामिनी अब अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकती । यदि आप इसी समय उसके पास चले चलेंगे तब शायद वह जी जाय । अन्यथा वह मछली जो सूखे तट पर छोड दी जावे, कितनी देर तक जीवित रह सकती है ?"

ईश्वर ने कहा, "लौट जाओ । मैं तुम्हे तब तक भीतर न आने दूँगा जब तक कि तुम मेरे सामने वह भूखी आत्मा न लाओगी, क्योंकि उसी की उपस्थिति मे मुझे आनद मिलता है ।"

इस अवतरण का मतलब यही है कि अनत का ध्यान केवल भावना से ही न हो वरन् आत्मा की सारी शक्तियो एवं आत्मा से ही हो ।

आत्मा और परमात्मा के मिलन मे माया का आवरण ही बाधक है । इसीलिये कबीर ने माया पर भी बहुत कुछ लिखा है । उन्होने 'रमैनी' और 'शब्द' में माया का इतना वीभत्स और भीषण चित्र खींचा है जो दृष्टि के सामने आते ही हृदय को आक्रोशपूर्ण भावनाओ से भर देता है । ज्ञात होता है, कबीर माया को उस हीन दृष्टि से देखते थे जिससे एक साधु या महात्मा किसी वेश्या को देखता है । मानो कबीर माया का सर्वनाश करना चाहते थे । वास्तव मे यही तो उनके रहस्यवाद में, आत्मा और परमात्मा की संधि मे बाधा डालने वाली सत्ता थी। उन्होंने देखा ससार सत्पुरुष की आराधना के लिए है । जिस निरजन ने एक बार विश्व का सृजन कर दिया वह मानो इसलिये कि उसने सत्पुरुष

की उपासना के साधन की सृष्टि की। परतु माया ने उस पर पाप का परदा सा डाल दिया। कितना सुदर ससार है, उसमे कितनी ही सुदर वस्तुएँ हैं! वह ससार सुनहला है, उसमे मधुर सुगधि है। सुदर अमराई है, उसमे सुदर बौर फूला है। मनोहर इद्र-धनुष है, उसमे न जाने कितने रगो की छटा है। पर वह सुगधि, वह बौर, वह रग, माया के आतक से कलुषित हैं। उस पुण्य के सुदर भाडार मे पाप की वासनापूर्ण मदिरा है। उस सुनहले स्वप्न मे भय और आशका की वेदना है। ऐसा यह मायामय ससार है! पाप के वातावरण से हट कर ससार की सृष्टि होनी चाहिए। वासना के काले बादलो से अलग ससार का इद्रधनुष जगमगावे। उस ससार मे निवास हो पर उसमे आसक्ति न हो। ससार की विभूतियाँ जिनमे माया का अस्तित्व है, नेत्रो के सामने बिखरी रहे पर उनकी ओर आकर्षण न हो। ससार मे मनुष्य रहे पर माया के कलुषित प्रभाव से सदैव दूर रहे।

अपनी 'रमैनी' और 'शब्द' मे कबीर ने माया के सबध मे बडे अभिशाप दिए हैं। मानो कोई सत किसी वेश्या को बडे कडे शब्दो में धिक्कार रहा है और वह चुपचाप सिर झुकाए सुन रही है। वाक्य-बाणो की बौछार इतनी तेज हो गई है कि कबीर को पद पद पर उस तेजी को सम्हालना पडता है। वे एक पद कहकर शात अथवा चुप नही रह सकते। वे बार-बार अनेक पदो मे अपनी भर्त्सनापूर्ण भावना को जगा जगा कर माया की उपेक्षा करते हैं। वे कभी उसका वासनापूर्ण चित्र अंकित करते हैं, कभी उसकी हँसी उडाते हैं, कभी उस पर व्यंग्य करते हैं, और कभी क्रोध से उसका भीषण तिरस्कार करते हैं। इतने पर भी जब उनका मन नही मानता तो वे थक कर सतो को उपदेश देने लगते हैं। पर जो आग उनके मन में लगी हुई है वह रह रह कर सुलग ही उठती है। अन्य बातो का वर्णन करते करते फिर उन्हे माया की याद आ जाती है, फिर पुरानी छिपी हुई आग प्रचड हो उठती है और कबीर भयानक स्वप्न देखने वाले की भाँति एक बार काँप कर क्रोध से न जाने क्या

कहने लग जाते हैं।

कबीर ने माया की उत्पत्ति की बडी गहन विवेचना की है, उतनी शायद किसी ने कभी नहीं की। बीजक के 'आदि मंगल' से यद्यपि वह विवेचना कुछ भिन्न है तथापि कबीरपथियो मे यही प्रचलित है :—

प्रारभ मे एक ही शक्ति थी, सार-भूत एक आत्मा ही थी। उसमे न राग था न रोष, कोई विकार नही था। उस सार-भूत आत्मा का नाम था सत्पुरुष। उस सत्पुरुष के हृदय मे श्रुति का सचार हुआ और धीरे धीरे श्रुतियाँ सात हो गईं। साथ ही साथ इच्छा का आविर्भाव हुआ। उसी इच्छा से सत्पुरुष ने शून्य मे एक विश्व की रचना की। उस विश्व के नियन्त्रण के लिए उन्होने छ ब्रह्माओ को उत्पन्न किया। उनके नाम थे —

ओंकार
सहज
इच्छा
सोहम्
अचित और
अक्षर

सत्पुरुष ने उन्हे ऐसी शक्ति प्रदान कर दी थी जिसके द्वारा वे अपने अपने लोक मे उत्पत्ति के साधन और सचालन की आयोजना कर सकें। पर सत्पुरुष को अपने काम मे बडी निराशा मिली। कोई भी ब्रह्मा अपने लोक का संचालन सुचारु रूप से नही कर सका। सभी अपने कार्य में कुशलता न दिखला सके, अतएव सत्पुरुष ने एक युक्ति सोची।

चारो ओर प्रशात सागर था। अनत जल-राशि थी। एकात में मौन होकर अक्षर बैठा था। सत्पुरुष ने उसकी आखो मे नींद का एक झोंका ला दिया। वह नींद मे झूमने लगा। धीरे-धीरे वह शिशु के समान गहरी निद्रा मे निमग्न हो गया। जब उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि उस अनंत जल राशि के ऊपर एक अंडा तैर रहा है।

वह बडी देर तक उसकी ओर देखता रहा, एकटक उसपर दृष्टि जमाये रहा। उस दृष्टि मे बडी शक्ति थी। एक बडा भारी शब्द हुआ, वह अडा फूट गया। उसमे से एक बडा भयानक पुरुष निकला, उसका नाम रक्खा गया। निरंजन। यद्यपि निरजन उद्धत स्वभाव का था पर उसने सत्पुरुष की बडी भक्ति की। उस भक्ति के बल पर उसने सत्पुरुष से यह वरदान माँगा कि उसे तीनो लोको का स्वामित्व प्राप्त हो।

इतना सब होने पर भी निरजन मनुष्य की उत्पत्ति न कर सका। इससे उसे बडी निराशा हुई। उसने फिर सत्पुरुष की आराधना कर एक स्त्री की याचना की। सत्पुरुष ने यह याचना स्वीकार कर एक स्त्री की सृष्टि की। वह स्त्री सत्पुरुष पर ही मोहित हो गई और सदैव उसकी सेवा मे रहने लगी। उससे बार-बार कहा गया कि वह निरजन के समीप जाय पर फल इसके विपरीत रहा। वह निरतर सत्पुरुष की ओर ही आकृष्ट थी। सत्पुरुष के अपरिमित प्रयत्नो के बाद उस स्त्री ने निरजन के पास जाना स्वीकार किया। उससे कुछ समय के बाद तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

१. ब्रह्मा
२ विष्णु
३ महेश

पुत्रोत्पत्ति के बाद निरजन अदृश्य हो गया, केवल स्त्री ही बची, उसका नाम था माया।

ब्रह्मा ने अपनी माँ से पूछा—

के तोर पुरुष का करि तुम नारी ?
(रमैनी ?)

कौन तुम्हारा पुरुष है, तुम किसकी स्त्री हो ?

इसका उत्तर माया ने इस प्रकार दिया—

हम तुम, तुम हम, और न कोई,
तुम मम पुरुष, हमहीं तोर जोइ।

कितना अनुचित उत्तर था ! माँ अपने पुत्र से कहती है, केवल हम ही तुम हैं और तुम ही हम, हम दोनो के अतिरिक्त कोई दूसरा नही है। तुम्ही मेरे पति हो और मैं ही तुम्हारी स्त्री हूँ।

इसी पद मे कबीर ने ससार की माया का चित्र खीचा है। यही ससार का निष्कर्ष है और कबीर को इसी से घृणा है। माँ स्वय अपने मुख से अपने पुत्र की स्त्री बनती है। इसीलिए कबीर अपनी पहली रमैनी में कहते हैं—

बाप पूत के एकै नारी, एकै माय बियाय।

मातृ-पद को सुशोभित करने वाली वही नारी दूसरी बार उसी पुरुष के उपभोग की सामग्री बनती है। यह है ससार का ओछा और वासनापूर्ण कौतुक ! माता के पद को सुशोभित करने वाली स्त्री उसी पुरुष जाति की अकशायिनी बनती है ! कितना कलुषित सबध है ! इसीलिए कबीर इस ससार से घृणा करते हैं। वे अपने छठे शब्द मे कहते हैं —

सर तो, अचरज एक भौ भारी
पुत्र धरल महतारी !

सत्पुरुष की वही उत्कृष्ट विभूति जो एक बार गौरवपूर्ण वैभव तथा ससार की सारी उज्जवल शक्तियो से विभूषित होकर माता बनने आई थीं, दूसरे ही क्षण ससार की वासना की वस्तु बन जाती है ! संसार की यह वासनामयी प्रवृत्ति क्या कमहेय है ? कबीर को यही ससार का व्यापार घृणापूर्ण दीख पडता था।

माया के इस घृणित उत्तर से ब्रह्मा को विश्वास नही हुआ। वह निरंजन की खोज मे चल पडा। माया ने एक पुत्री का निर्माण कर उसे ब्रह्मा के लौटाने के लिए भेजा पर ब्रह्मा ने यही उत्तर दिया कि मैंने अपने पिता को खोज लिया है, और उनके दर्शन पा लिए हैं। उन्होंने यही कहलाया है कि तुमने (माया ने) जो कुछ कहा है वह असत्य है, और इस असत्य के दंड स्वरूप तुम कभी स्थिर न रह सकोगी।

इसके पश्चात् ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना की जिसमे चार प्रकार के जीवों

की उत्पत्ति हुई ।

१ अंडज
२ पिंडज
३ श्वेदज
४ उद्भिज

सारी सृष्टि ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पूजन करने लगी और माया का तिरस्कार होने लगा । माया इसे सहन न कर सकी । जब उसने देखा कि मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार करा रहे है तो उसने तीन पुत्रियों को उत्पन्न किया जिनसे ३६ रागिनियाँ और ६३ स्वर निकल कर संसार को मोह मे आबद्ध करने लगे । सारा ससार माया के सागर मे तैरने लगा और सभी ओर मोह और पाखड का प्रभुत्व दीखने लगा । संत लोग इसे सहन न कर सके और उन्होने सत्पुरुष से इस कष्ट के निवारण करने को याचना की । सत्पुरुष ने इस अवसर पर एक व्यक्ति को भेजा जो ससार को माया-जाल से हटा कर सत्पुरुष की ओर ही आकर्षित करे । इस व्यक्ति का नाम था ।

कबीर

विश्व-निर्माण के विषय मे इसी धारणा को कबीर-पथी मानते हैं ।[१] कबीर स्वय इसे स्वीकार करते है और कहते है कि वे सत्पुरुष द्वारा भेजे गए है और सत्पुरुष ने अपने सारे गुणो को कबीर मे स्थापित कर दिया है । इसके अनुसार कबीर अपने और सत्पुरुष मे भेद नही मानते । कबीर के रहस्यवाद की विवेचना मे हम इस विषय का निरूपण कर ही आए हैं ।

'रमैनी' और 'शब्दो' को आद्योपात पढ़ जाने के बाद हम ठीक विवेचन कर सकते हैं कि कबीर माया का किस प्रकार बहिष्कार या तिरस्कार करते हैं ।

[१] दामा खेड़ा (छत्तीसगढ़) मठ में प्रचलित ।

शंकर और कबीर के मायावाद मे सब से बडा अतर यही है कि शंकर की माया केवल भ्रम-मूलक है। उससे रस्सी मे साँप का या सीप मे रजक का या मृगजल मे जल का भ्रम हो सकता है। यह नाम रूपात्मक ससार असत्य होकर भी सत्य के समान भासित होता है किन्तु कबीर ने इस भ्रम की भावना के अतिरिक्त माया को एक चंचल और छद्मवेषी कामिनी का रूप दिया है जो ससार को अपनी ओर आकर्षित कर वासना के मार्ग पर ले जाती है। माया एक विलासिनी स्त्री है। इसीलिए कबीर ने कनक और कामिनी को माया का प्रतीक माना है। इस माया का अपार प्रभुत्व है। वह तीनो लोको को लूट चुकी है।

रमैया की दुलहिन लूटा बजार।

आध्यात्मिक विवाह

आत्मा से परमात्मा का जो मिलाप होता है उसका मूल कारण प्रेम है। बिना प्रेम के आत्मा परमात्मा से न तो मिलने ही पाती है और न मिलने की इच्छा ही रख सकती है। उपासना से तो श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है, आराध्य के प्रति भय और आदर होता है पर भक्ति या प्रेम से हृदय मे केवल सम्मिलन की आकाक्षा उत्पन्न होती है। जब सूफीमत मे प्रेम का प्रधान महत्व है—रहस्यवाद मे प्रेम का आदि स्थान है—जो आत्मा मे परमात्मा से मिलने की इच्छा क्यो न उत्पन्न हो ? प्रेम ही तो दोनो के मिलन का कारण है।

प्रेम का आदर्श किस परिस्थिति मे पूर्ण होता है ? माता-पुत्र, पिता-पुत्र, मित्र-मित्र के व्यवहार मे नही। उसका एक कारण है। इन संबधो मे स्नेह की प्रधानता होती है। सरलता, दया, सहानुभूति ये सब स्नेह के स्तम्भ हैं। इससे हृदय की भावनाएँ एक शात वातावरण ही मे विकसित होती हैं। जीवो के प्रति साधु और सतो के कोमल हृदय का बिंब ही स्नेह का पूर्ण चित्र है। उससे इद्रियाँ स्वस्थ होकर शाति और सरलता से पुष्ट होती हैं। प्रेम स्नेह से कुछ भिन्न है। प्रेम मे एक प्रकार की मादकता होती है। उससे उत्तेजना आती है। इद्रियाँ मतवाली होकर आराध्य को खोजने लगती हैं। शाति के बदले एक प्रकार की विह्वलता आ जाती है। हृदय मे एक प्रकार की हलचल मच जाती है। सयोग मे भी अशाति रहती है। मन मे आकर्षण, मादकता अनुराग की प्रवृतियाँ और अंतर्प्रवृत्तियाँ एक बार ही जागृत हो जाती हैं। इस प्रकार के प्रेम की पूर्णता एक ही सबध मे है और वह सबध है पति पत्नी का। रहस्यवाद या सूफीमत में आत्मा और परमात्मा के प्रेम की पूर्णता ही प्रधान है, अतएव उसकी पूर्ति तभी हो सकती है जब आत्मा

और परमात्मा मे पति-पत्नी का सबध स्थापित हो जाय। कबीर ने लिखा ही है —

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

उस सबध मे प्रेम की महान शक्ति छिपी रहती है। इसी प्रेम के सहारे आत्मा मे परमात्मा से मिलने की क्षमता आती है। इस प्रेम में न तो वासना का विस्तार ही रहता है और न सासारिक सुखो की तृप्ति ही। इसमे तो सारी इंद्रियाँ आकर्षण, मादकता और अनुराग की प्रवृत्तियाँ और अतर्प्रवृत्तियाँ लेकर स्वाभाविक रूप से परमात्मा की ओर वैसे ही अग्रसर होती है जैसे नीची जमीन पर पानी। अतएव ऐसे प्रेम की पूर्ति तभी हो सकती है जब आत्मा और परमात्मा मे पति-पत्नी का सबध स्थापित हो जाय। बिना यह सबध स्थापित हुए पवित्र प्रेम मे पूर्णता नहीं आ सकती। हृदय के स्पष्ट भावो की स्वतन्त्र व्यञ्जना हुए बिना प्रेम की अभिव्यक्ति ही नही हो सकती। एक प्राण में दूसरे प्राण के घुल जाने की वाछा हुए बिना प्रेम मे पूर्णता नही आ सकती। एक भावना का दूसरी भावना मे निहित हुए बिना प्रेम मे मादकता नही आती। अपनी आकांक्षाएँ, आशाएँ, इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और सब कुछ आराध्य के चरणो मे समर्पित कर देने की भावना आए बिना प्रेम में सहृदयता नहीं आती। प्रेम की सारी व्यञ्जनाएँ, और व्याख्याएँ एक पति-पत्नी के सबंध मे ही निहित हैं। इसलिए प्रेम की इस स्वतन्त्र व्यञ्जना को प्रकाशित करने के लिए बडे-बडे रहस्यवादियों ने—ऊँचे से ऊँचे सूफियो ने आत्मा और परमात्मा को पति-पत्नी के संबंध में ससार के सामने रख दिया है। रहस्यवाद के इसी प्रेम में आत्मा स्त्री बनकर परमात्मा के लिए तडपती है, सूफीमत के इसी प्रेम में जीवात्मा पुरुष बन कर परमात्मा रूपी स्त्री के लिए तडपता है। इसी प्रेम के संयोग में रहस्यवाद और सूफीमत की पूर्णता है। प्रेम के इस संयोग ही को आध्यात्मिक विवाह कहते हैं।

कबीर ने भी अपने रहस्यवाद मे आत्मा को स्त्री मान कर पुरुष-रूप परमात्मा के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का निरूपण किया है। इस प्रेम के सयोग मे जब तक पूर्णता नही रहती तब तक आत्मा विरहणी बन कर परमात्मा के विरह मे तडपा करती है। इस विरह मे वासना का चित्र होते हुए भी प्रेम की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति रहती है। वासना केवल प्रेम का स्थूल रूप है जो नेत्रो के सामने नग्न रूप मे आ जाता है पर यदि उस वासना मे पवित्रता की सृष्टि हुई तो प्रेम का महत्त्व और भी बढ जाता है। रहस्यवाद की इस वासना मे सासारिकता की बू नही उसमे आध्यात्मिकता की सुगध है। इसलिए विरह की इस वासना का महत्त्व बहुत अधिक बढ जाता है। कबीर ने विरह का वर्णन जिस विदग्धता के साथ किया है उससे यही ज्ञात होता है कि कबीर की आत्मा ने स्वय ऐसी विरहिणी का वेष रख लिया होगा जिसे बिना प्रियतम के दर्शन के एक क्षण भर भी शाति न मिलती होगी। जिस प्रकार विरहिणी के हृदय मे एक कल्पना करुणा के सौ-सौ वेष बना कर आँसू बहाया करती है, उसी प्रकार कबीर के मन का एक भाव न जाने करुणा के कितने रूप रखकर प्रकट हुआ है। विरहिणी प्रतीक्षा करती है, प्रिय की बाते सोचती है, गुण-वर्णन करती है, विलाप करती है, आशा रख कर अपने मन को सतोष देती है, याचना करती है। कबीर की आत्मा ऐसी विरहिणी से कम नही है। वह परमात्मा की याद सौ प्रकार से करती है। उसके विरह मे तडपती है, अपनी करुणा-जनक अवस्था पर स्वय विचार करती है और हजारो आकाक्षाओ का भार लेकर, उत्सुकता और अभिलाषाओ का समूह लेकर, याचना की तीव्र भावना एक साथ ही प्राणो से निकाल कर कह उठती है :—

नैना नीझर लाइया, रहट बसै निस जाम।
पपिहा ज्यूँ पिव पिव करौ, कबरे मिलहुगे राम॥

कितनी करुण याचना है! करुणा मे घुल कर भिक्षुक प्राणो का

कितना विह्वल स्पष्टीकरण है । यह आत्मा का विरह है जिसमे वह रो रो कर कहती है —

बाल्हा आव हमारे गेह रे,
तुम बिन दुखिया देह रे।
सबको कहैं तुम्हारी नारी मोको इहै अदेह रे,
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
अंन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूँ कामी को काम पियारा, ज्यूँ प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी, हरि से कहै सुनाई रे,
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जिव जाइ रे।

इस शब्द मे यह यद्यपि सासारिकता का वर्णन आ गया है किन्तु आध्यात्मिक विरह को ध्यान मे रख कर पढ़ने से सारा अर्थ स्पष्ट हो जाता है और आत्मा और परमात्मा के मिलन की आकाक्षा ज्ञात हो जाती है। ऐसे पदो मे यही बात तो विचारणीय है कि सासारिकता को साथ लिए भी आत्मा का विरह कितने उत्कृष्ट रूप से निभाया जा सकता है। विरह की इस आँच से आत्मा पवित्र होती है और फिर परमात्मा से मिलने के योग्य बन सकती है। बस विरह से आत्मा का अस्तित्व और भी स्पष्ट होकर परमात्मा से मिलने के योग्य बन जाता है। अडरहिल ने लिखा है।—

[१]"रहस्यवादी बार-बार हमे यही विश्वास दिलाते हैं कि इससे व्यक्तित्व खोता नही वरन् अधिक सत्य बनता है।"

शमसी तबरोज़ ने परमात्मा को पत्नी मान कर अपनी विरह-व्यथा इस प्रकार सुनाई है —

---

[१]Over and over again they assure us that personality is not lost but made more real.

अडरहिल रचित मिस्टिसिज्म, पृष्ठ ५०३

[१]इस पानी और मिट्टी के मकान मे तेरे बिना यह हृदय खराब है। या तो मकान के अन्दर आ जा, ऐ मेरी जाँ, या इस मकान को छोड़ देता हूँ।

कबीर ने भी यही विचार इस प्रकार कहा है —

> **कहैं कबीर हरि दरस दिखाओ।**
> **हमहिं बुलावो कि तुम चल आओ॥**

इस प्रकार इस विरह मे जब आत्मा अपने विकारो को नष्ट कर लेती है, अपने आँसुओ से अपने सब दोषो को धो लेती है, अपनी आहो से अपने सारे दुर्गुणो को जला लेती है तब कही वह इस योग्य बनती है कि परमात्मा के द्वार पर पहुच कर उसके दर्शन करे और अन्त मे उनसे सबध हो जाय।

परमात्मा से शराब-पानी की तरह मिलने के पहले आत्मा का जो परमात्मा से सामीप्य होता है उसे ही आध्यात्मिक भाषा मे 'विवाह' कहते है। इस स्थिति मे आत्मा अपनी सारी शक्तियो को परमात्मा मे समर्पित कर देती है। आत्मा की सारी भावनाएँ परमात्मा की विभूतियो मे लीन हो जाती है और आत्मा परमात्मा की आज्ञाकारिणी उसी प्रकार बन जाती हैं जिस प्रकार पत्नी पति की। अनेक दिनो की तपस्या के

در خانۂ آب و گل
لمے تشت خراب دان دل
یا خانه در آ اے جان
یا خانه بپر دازم

[१]दर खानाए आबो गिल
लबे तुरा खराब दान दिल
या खाना दर आ ए जाँ
या खाना बिपर दाजम्
—दीवाने शमसी तब्रीज़

बाद, अनेको कष्ट उठाने के बाद, आशाओ और इच्छाओ की वेदना भी सह लेने के बाद जब आत्मा को परमात्मा की अनुभूति होने लगती है तो वह उमग मे कह उठती है :—

बहुत दिनन थे मैं प्रीतम पाये,
भाग बडे घर बैठे आये।
मंगलचार माँहि मन राखौं,
राम रसाँइण रसना चाखौं।
मंदिर माँहि भया उजियारा,
मैं सूती अपना पीव पियारा।
मैं ’र निरासी जे निधि पाई,
हमहि कहा यहु तुमहि बडाई।
कहै कबीर, मैं कछू न कीन्हा,
सखीं सुहाग राम मोहिं दीन्हा।

ऐसी अवस्था मे आत्मा आनद से पर्ण होकर ईश्वर का गान गाने लगती है । उसे परमात्मा की उत्कृष्टता ज्ञात हो जाती है, अपनी उत्सुकता की थाह मिल जाती है। उस उत्सुकता मे उसका सारा जीवन एक चक्र की भाँति घूमता रहता है । आत्मा अपने आनद मे विभोर होकर परमात्मा की दिव्य शक्तियो का तीव्र अनुभव करने लगती है। उसकी उस दशा मे आनद और उल्लास की एक मतवाली धारा बहने लगती है। उसके जीवन मे उत्साह और हर्ष के सिवाय कुछ नही रह जाता। माधुर्य मे ही उसकी सारी प्रवृत्तियाँ वेगवती वारि-धारा के समान प्रवाहित हो जाती है, माधुर्य मे ही उसके जीवन का तत्त्व मिल जाता है माधुर्य ही मे वह अपने अस्तित्व को खो देती है।

यही आध्यात्मिक विवाह का उल्लास है।

आनंद

जब आत्मा परमात्मा की विभूतियो का अनुभव करने को अग्रसर होती है तो उसमे कितनी उत्सुकता और कितनी उमग रहती है ! उस उत्सुकता और उमग मे उसकी सारी भावनाएँ जाग उठती हैं और वे ईश्वरीय अनुभूति के लिए व्यग्र हो जाती है, जब आत्मा अपने विकास के पथ पर परमात्मा की दिव्य शक्तियो को देखती है तो उसे एक प्रकार के अलौकिक आनद का प्रवाह ससार से विमुख कर देती है। इसीलिए तो परमात्मा की दिव्य शक्तियो को पहिचानने वाले रहस्यवादी ससार के बाह्य चित्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं —

रे यामें क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहि कहत घर मेरा।
(कबीर)

वे जब एक बार परमात्मा के अलौकिक सौदर्य, को अपनी दिव्य आँखो से देख लेते है तब उनके हृदय मे ससार के लिये कोई आकर्षण नही रह जाता। ससार की सुन्दर से सुन्दर वस्तु उन्हे मोहित नही कर सकती। वे उसे माया का जजाल समझते हैं। आत्मा को मोह मे भुलाने का इद्रधनुष जानते है और ईश्वर से दूर हटाने का कुत्सित और कलुषित मार्ग। दूसरी बात यह भी है कि परमात्मा की विभूतियाँ उनको अपने सौदर्य-पाश मे इस प्रकार बाँध लेती है कि फिर उन्हे किसी दूसरी ओर देखने का अवसर ही नही मिलता अथवा वे दूसरी ओर देखना ही नही चाहते। उनके हृदय मे आनद की वह रागिनी बजती है जिसके सामने ससार के आकर्षक से आकर्षक स्वर नीरस जान पडने लगते है। वे ईश्वरीय अनुभूति के लिए तो सजीव हो जाते हैं पर संसार के लिए निर्जीव। वे ईश्वर के ध्यान मे इतने मस्त हो जाते है कि फिर

उन्हे ससार का ध्यान कभी अपनी ओर खीचता ही नही। वे ईश्वर का अस्तित्व ही खोजते है—अपने शरीर मे वाह्य ससार मे नही क्योकि उससे तो वे विरक्त हो चुके है। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान मे रखना आवश्यक है। यद्यपि यह ईश्वर की अनुरक्ति आत्मा को परमात्मा के बहुत निकट ला देती है पर आत्मा की सकुचित सीमा मे परमात्मा का व्यापक रूप स्पष्ट न दीख पडने की भी तो संभावना है। बाह्य ससार मे ईश्वर की जितनी विभूतियाँ जितनी स्पष्टता के साथ प्रकट है उतनी स्पष्टता के साथ, सभव है, आत्मा के प्रकट न हो सके। विशेषकर ऐसी स्थिति मे जब कि आत्मा अभी परमात्मा के मिलन-पथ पर ही है—पूर्ण विकसित नही हुई है। ऐसी स्थिति मे आत्मा परमात्मा का उतना ही रूप ग्रहण कर सकती है जितना कि उसकी परिधि मे आ सकती है। परमात्मा के गुणो का ग्रहण ऐसी अवस्था मे कम और अधिक से अधिक भी हो सकता है। यह आत्मा के विकसित और अविकसित रूप पर निर्भर है। इसलिए यह आवश्यक है कि परमात्मा के ध्यानोल्लास मे मग्न आत्मा ससार का बहिष्कार केवल इसलिए न करे कि ससार मे भी परमात्मा की शक्तियो का प्रकाशन है। ससार का सौंदर्य अनत को देखने के लिये एक साधन-मात्र है। फारसी के एक कवि ने लिखा है —

हुस्न खूबाँ बहरे हकबीनी मिसाले ऐनकस्त,
मी देहद बीनाई अन्दर दीदए नज्जारे मन।

कबीर ने बाह्य ससार से तो आँखे बन्द कर ली हैं :—

तिल तिल कर यह माया जोरी,
चलत बेर तिणां ज्यूँ तोरी।
कहै कबीर तू ता कर दास,
माया माँहि रहै उदास॥

दूसरे स्थान पर वे कहते हैं :—

किसकी ममा चचा पुनि किसका,
किसका पंगुड़ा जोई।

यह संसार बंजार मंढ़्या है,
जानेगा जन कोई ॥
मैं परदेशी काहि पुकारौं,
यहाँ नहीं को मेरा ।
यह संसार ढूँढि जब देखा,
एक भरोसा तोरा ।

इस प्रकार कबीर केवल परमात्मा की एकात विभूतियो मे रमना चाहते है। उन्हे परमात्मा ही मे आनद आता है, ससार मे प्रदर्शित ईश्वर के रूपो मे नही।

परमात्मा के लिए आकाक्षा मे एक प्रकार का अलौकिक आनद है जिसमे प्रत्येक रहस्यवादी लीन रहता है। यह आनद दो प्रकार से हो सकता है। शारीरिक आनद, और आध्यात्मिक आनद । शारीरिक आनद मे शरीर की सारी शक्तियाँ ईश्वर की अनुभूति मे प्रसन्न होती है, आनद और उल्लास मे लीन हो जाती है। आध्यात्मिक आनंद मे शरीर की सारी शक्तियाँ लुप्त भी होने लगती है। शरीर मृतप्राय सा हो जाता है। चेतना शून्य होने लगती है, केवल हृदय की भावनाएँ अनंत शक्ति के आनद मे ओत-प्रोत हो जाती है। अडरहिल ने अपनी पुस्तक 'मिस्टिसिज्म' मे इस आनद की तीन स्थितियाँ मानी है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। परतु मैं मानसिक स्थिति को शारीरिक स्थिति मे ही मानता हूँ। उसका प्रधान कारण तो यही है कि बिना मानसिक आनद के शारीरिक आनद हो ही नही सकता। जब तक मन मे ईश्वर की अनुभूति का आनद न आयेगा तब तक शरीर पर उस आनंद के लक्षण क्या प्रकट हो सके ! दूसरा कारण यह है कि आत्मा की जो दशा मानसिक आनद मे होगी वही शारीरिक आनद में भी। ऐसी स्थिति मे जब दोनो का रूप और प्रभाव एक ही है तो उन्हे भिन्न मानना युक्ति सगत प्रतीत नही होता। अब हम दोनो स्थितियो पर स्वतंत्र रूप से प्रकाश डालेगे।

पहले उस आनद का रूप शारीरिक स्थिति मे देखिए। जब आत्मा ने एक बार परमात्मा की अलौकिक शक्तियो से परिचय पा लिया तब उस परिचय की स्मृति मे हृदय की सारी भावनाएँ आनद मे परिप्रोत हो जाती है। उनका असर प्रत्येक इद्रिय पर पडने लगता है उस समय रहस्यवादी अपने अगो मे एक प्रकार का अनोखा बल अनुभव करने लगता है। उसके प्रत्येक अवयव आनद से चचल हो उठते हैं। अग प्रत्यग थिरकने लगता है। उसकी विविध इद्रियाँ आनद से नाच उठती हैं। कबीर ने इसी शारीरिक आनद का कितना सुदर वर्णन किया —

हरि के बारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिन पाये।
ग्यान अचेत फिरैं नर लोई,
तार्थें जनमि जनमि डहकाये।
धौल मंदलिया बैल रबाबी,
कऊआ ताल बजावै,
पहिर चोलना गादह नाचै,
भैंसा निरति करावै।
स्यघ बैठा पाँन कतरै,
घूँस गिलौरा लावै,
उदरी बपुरी मङ्गल गावै,
कछू एक आनद सुनावै।
कहै कबीर सुनो रे संतो,
गडरी परबत खावा,
चकवा बैठि अँगारै निगलै,
समँद आकासाँ धावा।

कबीर भिन्न-भिन्न इद्रियो के उल्लास का निरूपण भिन्न-भिन्न जानवरो के कार्य-व्यापारो मे ही कर सके। ज्ञानेन्द्रियो अथवा कर्मेन्द्रियो का विलक्षण उल्लास ससार के रूपक मे वर्णन किया जा सकता था ? शारीरिक आनद की विचित्रता के लिए "स्यघ बैठा पान कतरै, घूँस गिलौरा

लावैं" के अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता था! रहस्यवादी उस विलक्षणता को किस प्रकार प्रकट करता! सीधे-सादे शब्दो मे अथवा वर्णनो मे उस विलक्षणता का प्रकाशन ही किस प्रकार हो सकता था? इंद्रियो के उस उल्लास को कबीर के इस पद मे स्पष्ट प्रकाशन मिल गया है। यही शारीरिक आनन्द का उदाहरण है।

अडरहिल ने लिखा है कि शारीरिक उल्लास मे एक मूर्छा सी आ जाती है। हाथ पैर ठडे और निर्जीव हो जाते है। किसी बात के ध्यान मे आने से अथवा किसी वस्तु को देखने से परमात्मा की याद आ जाती है। और वह याद इतनी मतवाली होती है कि रहस्यवादी को उसी समय मूर्छा आ जाती है। वह मूर्छा चाहे थोडी देर के लिए हो अथवा अधिक देर के लिए। मेरे विचार मे मूर्छा का सबध हृदय से है शरीर से नही। यदि हृदय स्वाभाविक गति मे रहे और शरीर को मूर्छा आ जाय अथवा शरीर के अग कार्य न कर सके, वे शून्य पड जायँ तो वह शारीरिक स्थिति कही जा सकती है। जहाँ आत्मा मूर्छित हुई, उसके साथ ही साथ स्वभावत शरीर भी मूर्छित हो जायगा। शरीर तो आत्मा से परिचालित है, स्वतन्त्र रूप से नही। जहाँ तक हृदय की मूर्छा से सम्बन्ध है, मैं उसे आध्यात्मिक स्थिति ही मान सकूँगा, शारीरिक नही। शारीरिक उल्लास के विवेचन मे अडरहिल ने एक उदाहरण भी दिया है।

जिनेवा की कैथराइन जब मूर्छितावस्था से उठी तो उसका मुख गुलाबी था, प्रफुल्लित था और ऐसा मालूम हुआ मानो उसने कहा "ईश्वर के प्रेम से मुझे कौन दूर कर सकता है?"[१]

---

[१]And when she came forth from her hiding place her face was rosy as it might be a cherib's and it seemed as if she might have said, "who shal separate me from the

यदि शारीरिक उल्लास मे हाथ-पैरो मे रक्त का सचालन मन्द पड जाता है, शरीर ठडा और दृढ हो जाता है तो कैथराइन का गुलाबी मुख शारीरिक उल्लास का परिचायक नही था।

आध्यात्मिक आनद मे आत्मा इस ससार के जीवन मे एक अलौकिक जीवन की सृष्टि कर लेती है। इस स्थिति मे आत्मा केवल एक ही वस्तु पर केन्द्रीभूत हो जाती है। और वह वस्तु होती है परमात्मा की प्रेम विभूति।

राम रस पाइयारे ताते बिसरि गये रस और।

(कबीर)

उस समय बाह्येद्रियो से आत्मा का सबध नही रह जाता। आत्मा स्वतत्र होकर अपने प्रेममय दिव्य जीवन को सृष्टि कर लेती है। ऐसी स्थिति मे आत्मा भावोन्माद मे शरीर के साथ मूर्छित भी हो सकती है। उस समय न तो आत्मा ही ससार की कोई ध्वनि ग्रहण कर सकती है और न शरीर ही किसी कार्य का सपादन कर सकता है। आत्मा और शरीर की यह सम्मिलित मूर्छा रहस्यवादी उत्कृष्ट सफलता है।

आत्मा की उस मूर्छा मे पहले या बाद ईश्वरीय प्रेम का स्रोत आत्मा से इतने वेग से उमडता है कि उसके सामने ससार की कोई भी भावना नही ठहर सकती। उस समय आत्मा मे ईश्वर का चित्र अन्तर्हित रहता है। उस अलौकिक प्रेम के प्रवाह मे इतनी शक्ति होती है कि वह आत्मा के सामने अव्यक्त अलौकिक सत्ता का एक चित्र-सा खीच देती है। आत्मा मे अतर्हित ईश्वरीय सत्ता स्पष्ट रूप से आत्मा के सामने आ जाती है। उस भावोन्माद मे इतना बल होता है कि आत्मा स्वय अपने मे से ईश्वर को निकाल कर उसकी आराधना मे लीन हो जाती है। कबीर इसी अवस्था को इस प्रकार लिखते हैं —

---

love of God ?"

अडरहिल रचित मिस्टिसिज़म, पृष्ठ ४३३

जलि जाई थलि उपजी
आई नगर मैं आप,
एक अचंभा देखिए
बिटिया जायो बाप।

प्रेम की चरम सीमा मे, आध्यात्मिक आनंद के प्रवाह मे आत्मा जो परमात्मा से उत्पन्न है अपने मे अंतर्हित परमात्मा का चित्र खीच लेती है मानो 'बिटिया' अपने बाप को उत्पन्न कर देती है। यही उस आध्यात्मिक आनद के प्रवाह की उत्कृष्ट सीमा है। आत्मा उस समय अपना व्यक्तित्व ही दूसरा बना लेती है। आध्यात्मिक आनद के तूफान मे आत्मा उड कर अनत सत्य की गोद मे जा गिरती है, जहाँ प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नही है।

गुरु

गुरु प्रसाद अकल भई तोको नहिं तर था बेगाना ।

(कबीर)

रामानद के पैरो से ठोकर खाकर उषा-बेला मे कबीर ने जो गुरु मत्र सीखा था उसमे गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति थी ! राम-मत्र के साथ-साथ गुरु का स्थान कबीर के हृदय मे बहुत ऊंचा था उनके विचारानुसार गुरु तो ईश्वर से भी बडा है। बिना उसकी सहायता के आत्मा की अशुद्धि से परमात्मा की प्राप्ति भी नही हो सकती। अतएव जो व्यक्ति परमात्मा के मिलन मे आवश्यक रूप से वर्तमान है, जो शक्ति अनत-सयोग के लिए नितात आवश्यक है, उस शक्ति का कितना मूल्य है, यह शब्दो मे कैसे बतलाया जा सकता है ? गुरु की कृपा ही आत्मा को परमात्मा से मिलने के रास्ते पर ले जाती है। अतएव गुरु जो आध्यात्मिक जीवन का पथ-प्रदर्शक है, ईश्वर से भी अधिक आदरणीय है। इसीलिए तो कबीर के हृदय मे शका हो जाती है कि यदि गुरु और गोविद दोनो खडे हुए है तो पहले किसके चरण स्पर्श किए जायँ ? अन्त मे गुरु ही के चरण छुए जाते है जिन्होने स्वय गोविंद को बतला दिया है ।

कबीर ने तो सदैव गुरु के महत्व को तीव्र से तीव्र शब्दो मे घोषित किया है। बिना गुरु के यदि कोई चाहे कि वह ईश्वर का ज्ञान प्राप्त कर ले तो वह कठिन ही नही वरन् असभव है। "गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै" का सिद्धात तो सदैव उनकी आँखो के सामने था। ऐसा गुरु जो परमात्मा का ज्ञान कराता है, कबीर के मतानुसार आध्यात्मिक जीवन के लिये परमावश्यक है।

कबीर के विचारो मे गुरु आत्मा और परमात्मा मे मध्यस्थ है।

वही दोनो का सयोग कराता है। सयोगावस्था मे चाहे गुरु की आवश्य-कता न हो पर जब तक आत्मा ओर परमात्मा मे सयोग नही हो जाता तब तक गुरु का सदैव साथ होना चाहिये, नही तो आत्मा न जाने रास्ता भूल कर कहाँ चली जाय ।

कबीर ने अपने रेखतो मे गुरु की प्रशसा जी खोल कर की है —

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै
गुरुदेव बिन जीव का भला नाही,
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नही
समुझि विचार ले सनै माँहीं।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये
जनम अनेक की अटक खोलै,
कहै कब्बीर गुरुदेव पूरन मिलै
जीव और सीव तब एक तोलै ॥
करौ सतसंग गुरुदेव से चरन गहि
जासु के दरस तें भर्म भागै,
सील औ साँच संतोष आवै दया
काल की चोट फिर नाहि लागै।
काल के जाल मे सकल जिव बधिया
बिन ज्ञान गुरुदेव घट अँधियारा,
कहै कब्बीर जन जनम आवै नही
पारस परस पद होय न्यारा ॥
गुरुदेव के भेव को जीव जाने नहीं
जीव तो आपनी बुद्धि ठानै,
गुरुदेव तो जीव को काढि भव-सिंध तें
फेरि लै सुक्ख के सिंध आनै।
बद करि दृष्टि को फेरि अंदर करै
घट का पाट गुरुदेव खोलै,

कहत कब्बीर तू देख संसार मे
गुरुदेव समान कोई नाँहि तोलै ॥

सभी रहस्यवादियो ने आत्मा की प्रारभिक यात्रा मे गुरु की आवश्यकता मानी है। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी के भाग १ मे पीर (गुरु) की प्रशसा लिखी है —

ओ सत्य के वैभव, हुसामुद्दीन, कागज़ के कुछ पन्ने और ले और पीर के वर्णन मे उन्हे कविता से जोड दे।

यद्यपि तेरे निर्बल शरीर मे कुछ शक्ति नही है तथापि (तेरी शक्ति के) सूर्य बिना हमारे पास प्रकाश नही है।

पीर (पथ-प्रदर्शक) ग्रीष्म (के समान) है, और (अन्य) व्यक्ति शरत्काल (के समान) है। (अन्य) व्यक्ति रात्रि के समान है, और पीर चन्द्रमा है।

मैंने (अपनी) छोटी निधि (हुसामुद्दीन) को पीर (वृद्ध) का नाम दिया है। क्योकि वह सत्य से वृद्ध (बनाया गया) है। समय से वृद्ध नही (बनाया गया)।

वह इतना वृद्ध है कि उसका आदि नही है, ऐसे अनोखे मोती का कोई प्रतिद्वन्द्वी नही है।

वस्तुत. पुरानी शराब अधिक शक्तिशालिनी है निस्सदेह पुराना सोना अधिक मूल्यवान है।

पीर चुनो, क्योकि बिना पीर के यह यात्रा बहुत ही कष्ट-मय, भयानक और विपत्ति-मय है।

बिना साथी के तुम सडक पर भी उद्भ्रान्त हो जाओगे जिस पर तुम अनेक बार चल चुके हो।

जिस रास्ते को तुमने बिलकुल भी नही देखा उस पर अकेले मत चलो, अपने पथ-प्रदर्शक के पास से अपना सिर मत हटाओ।

मूर्ख, यदि उसकी छाया (रक्षा) तेरे ऊपर हो तो शैतान की कर्कश ध्वनि तेरे सिर को चक्कर मे डाल कर तुझे (यहाँ-वहाँ) घुमाती

रहेगी। शैतान तुझे रास्ते से बहका ले जायगा (और) तुझे 'नाश' मे डाल देगा, इस रास्ते मे तुझ से भी चालाक हो गए है (जो बुरी तरह से नष्ट किये गए हैं)।

सुन (सीख) कुरान से—यात्रियो का विनाश ! नीच इबलिस ने उनसे क्या व्यवहार किया है !!

वह उन्हे रात्रि मे अलग, बहुत दूर, ले गया—सैकडो हज़ारो वर्षों की यात्रा मे—उन्हे दुराचारी ने (अच्छे कार्यों से रहित) नग्न कर दिया।

उनकी हड्डियाँ देख—उनके बाल देख ! शिक्षा ले, और उनकी ओर अपने गधे (इद्रियो) को मत हाँक। अपने गधे की गर्दन पकड और उसे रास्ते की तरफ उनकी ओर ले जा जो रास्ते को जानते हैं और उस पर अधिकार रखते है।

खबरदार ! अपना गधा मत जाने दे, और अपने हाथ उस पर से मत हटा, क्योकि उसका प्रेम उस स्थान से है जहाँ हरी पत्तियाँ बहुत होती है।

यदि तू एक क्षण के लिए भी असावधानी से उसे छोड दे तो वह उस हरे मैदान की दिशा मे अनेक मील चला जायगा। गधा रास्ते का शत्रु है, (वह) भोजन के प्रेम मे पागल-सा है। ओ., बहुत से हैं जिनका उसने सर्वनाश किया है !

यदि तू रास्ता नही जानता, तो जो कुछ गधा चाहता है, उसके विरुद्ध कर। वह अवश्य ही सच्चा रास्ता होगा।

(पैगम्बर ने कहा), उन (स्त्रियो) की समति ले, और फिर (जो सलाह वे देती हे) उसके विरुद्ध कर। जो उनकी अवज्ञा नही करता, वह नष्ट हो जायगा।

(शारीरिक) वासनाओ और इच्छाओ का मित्र मत बन—क्योकि वे ईश्वर के रास्ते से अलग ले जाती हैं।

× × ×

कबीर ने भी गुरु को सदैव अपना पथ-प्रदर्शक माना है। उन्होंने लिखा है :—

> पासा पकड्या प्रेम का,
> सारी किया सरीर,
> सतगुरु दाँव बताइया,
> खेलै दास कबीर।

मध्वाचार्य के द्वैतवाद मे जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा के बीच मे 'वायु' का विशिष्ट स्थान है उसी प्रकार कबीर के ईश्वरवाद मे गुरु का। कबीर ने जिस गुरु को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है उसका परिचय क्या है ?

(क) ज्ञान उसका शब्द हो। लौकिक और व्यावहारिक ही नही, वरन् आध्यात्मिक भी। उसमे यह शक्ति हो कि वह पतित से पतित आत्मा मे ज्ञान का सचार कर उसे सत्पथ की ओर अग्रसर करा दे। उसके हृदय मे ज्ञान का प्रवाह इतना अधिक हो कि शिष्य उसमे बह जाय। उसके ज्ञान से आत्मा के हृदय का अधकार दूर हो जाय और वह अपने चारो ओर की वस्तुएँ स्पष्ट रूप से देख ले। उसे मालूम हो जाय कि वह किस ओर जा रहा है—पाप और पुण्य किसे कहते है, उन्नति और अवनति का क्या तात्पर्य है। लौकिक मे क्या अंतर है। आत्मा को प्रकाशित करने के क्या साधन है।

> पीछे लागा जाइ था,
> लोक वेद के साथ।
> आगे थैं सतगुरु मिल्या,
> दीपक दिया हाथ॥

* * * * * * * *

> माया दीपक नर पतँग,
> भ्रमि भ्रमि इवैं पडंत।

वह निंदा न करे,

दोष पराये देख कर,
चला हसंत हसत,
अपनै च्येत न आवई,
जिनकी आदि न अंत।

यदि ऐसे दोष शिष्य मे कभी आ भी जायँ तो गुरु मे ऐसी शक्ति है कि वह शिष्य को उचित मार्ग का निर्देश कर दे।

इसी कारण गुरु का महत्त्व ईश्वर के महत्त्व से भी कही बढकर है। घेरण्ड सहिता के तृतीयोपदेश मे गुरु के सबध मे कुछ श्लोक दिये गये हैं। वे बहुत महत्त्वपूर्ण हे। उनका अर्थ यही है कि केवल वही ज्ञान उपयोगी और शक्ति-सपन्न है जो गुरु ने अपने ओठो से दिया है, नही तो वह ज्ञान निरर्थक, अशक्त ओर दु खदायक हो जाता है। 'इसमे कुछ भी सदेह नही कि गुरु पिता है, गुरु माता है और यहाँ तक कि गुरु ईश्वर भी है। इसी कारण उसकी सेवा मनसा वाचा कर्मणा होनी चाहिए। गुरु की कृपा से सभी शुभ वस्तुओ की प्राप्ति होती है। इसीलिए गुरु की सेवा नित्य ही होनी चाहिए, नही तो कोई कार्य मगल-मय नही हो सकता।'[१]

ऐसे गुरु की ईश्वरानुभूति महान् शक्ति है। वह अपने शिष्य को उन 'शब्दो' का उपदेश दे, जिनसे वह परमात्मा के देवी वातावरण मे साँस

---

[१] भवेद्वीर्यवती विद्या गुरु वक्त्र समुद्भवा
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यनि दु खदा—

[घेरंड संहिता तृतीयोपदेश, श्लोक १० ॥

गुरु पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशय.
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वै प्रसेव्यते ॥ " श्लोक १३ ॥
गुरुप्रसादतः सर्वंलभ्यते शुभमात्मन.
तस्मात्सेव्यो गुर्रुनित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ॥ " श्लोक १४ ॥

ले सके। उसके उपदेश बाण के समान आकर शिष्य के मोहजाल को नष्ट कर दे और शिष्य अपनी अज्ञानता का अनुभव कर ईश्वर से मिलने की ओर अग्रसर हो। ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर जब गुरु शिष्य को ईश्वर के दिव्य प्रकाश से परिचित करा देता है, वह गुरु का कार्य समाप्त हो जाता है और आत्मा स्वय परमात्मा की ओर बढ जाती है जहाँ किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नही होती। गुरु से प्रोत्साहित होकर, गुरु से शक्तियाँ लेकर, आत्मा अपने को परमात्मा मे मिला देती है, जहाँ वह आनद सयोग मे लीन हो जाती है। ऐसी अवस्था मे भी गुरु उस आत्मा पर प्रकाश डालता रहता है जिस प्रकार नक्षत्र उषा की उज्जवल प्रकाश-रश्मियो के आने पर भी अपना झिलमिल प्रकाश फेकते रहते हैं।

हठयोग

कबीर के 'शब्दो' हठयोग के भी कुछ सिद्धान्त मिलते है। यद्यपि इन सिद्धान्तो का स्पष्ट रूप कबीर की कविता मे प्रस्फुटित नही हुआ तथापि उनका बाह्य रूप किसी न किसी ढग से अवश्य प्रकट हो गया है। कबीर अपढ थे। अतएव उन्होंने हठयोग अथवा राजयोग के ग्रथो को तो छुआ भी न होगा। योग का जो कुछ ज्ञान उन्हे सत्सग और रामानन्द आदि से प्रसाद स्वरूप मिल गया होगा, उसी का प्रकाशन उन्होंने अपने बेढगे पर सच्चे चित्रो मे किया है। कबीर अपने समय के महात्मा थे। उनके पास अनेक प्रकार के मनुष्यो की भीड अवश्य लगी रहती होगी। ईश्वर, धर्म और वैराग्य के वातावरण मे उनका योग के बाह्य रूप से परिचित होना असभव नही था।

योग का शाब्दिक अर्थ जोडना (युज् धातु) है। आत्मा जिस शारीरिक या मानसिक साधन से परमात्मा मे जुड जावे, वही योग है। माया के प्रभाव से रहित होकर जब आत्मा सत्य का अनुभव कर समाधिस्थ हो परमात्मा के रूप मे निमग्न हो जाती है उसी समय योग सफल माना जाता है।

योग के अनेक प्रकार हैं :—

१ ज्ञानयोग

२ राजयोग

३ हठयोग

४ मंत्रयोग

५ कर्मयोग, आदि

आत्मा अनेक प्रकार से परमात्मा में सबद्ध हो सकती है। ज्ञान के विकास से जब आत्मा विवेक और वैराग्य मे अपने अस्तित्व को भूल

जाती है और अस्तित्व के कण मे परमात्मा का अविनाशी रूप देखती है तब मुक्ति मे दोनो का अविदित समिलन हो जाता है (ज्ञानयोग) । आत्मा कार्यों का परिणाम सोचे बिना निष्काम भाव से कार्य कर परमात्मा मे लीन हो जाती है (कर्मयोग) । आत्मा परमात्मा के नाम अथवा उससे सबध रखने वाली किसी पक्ति का उच्चारण करते-करते, किसी कार्य-विशेष को करते हुए, ध्यान मे मग्न हो उससे मिल जाती है (मत्रयोग) । अपने अगो और श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित सचालन करते हुए (हठयोग) एव मन को एकाग्र कर परमात्मा के दिव्य स्वरूप पर मनन करते हुए समाधिस्थ हो ईश्वर से मिल जाती है (राजयोग) । इस भाँति अनेक प्रकार से आत्मा परमात्मा मे सबद्ध हो सकती है । हठयोग और राजयोग वस्तुत: एक ही भाग के दो अग हैं । हृदय को सयत करने के पहले (राजयोग) अगो को सगत करना आवश्यक है (हठयोग) । बिना हठयोग के राजयोग नही हो सकता । अतएव हठयोग राजयोग की पहली सीढ़ी है—हठयोग और राजयोग दोनो मिल कर एक विशिष्ट योग की पूर्ति करते हैं । कबीर के सबध में हमे यहाँ विशेषत. हठयोग पर विचार करना है क्योकि कबीर के शब्दो में हठयोग ही का रूप मिलता है ।

हठयोग का सारभूत तत्व तो बलपूर्वक ईश्वर से मिलना है । उसमे शारीरिक और मानसिक परिश्रम की आवश्यकता विशेष रूप से पडती है । शरीर को अधिकार मे लाने के लिए कुछ आसनो का अभ्यास करना पडता है—खासकर श्वास का आवागमन सचालित करना पडता है । और मन को रोकने के लिए ध्यानादि की आवश्यकता पडती है । [1]योग-सूत्र के निर्माता पतजलि ने (ईसा की दूसरी शताब्दी पहले) योग साधन के लिए आठ अग माने है । वे क्रमश इस प्रकार हैं —

---

१ यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि

[पतंजलि योगदर्शन २—साधनपाद, सूत्र २६

१ यम
२ नियम
३ आसन
४ प्राणायाम
५ प्रत्याहार
६ धारणा
७ ध्यान और
८ समाधि

यम और नियम मे आचार को परिष्कृत करने की आवश्यकता पडती है। यम मे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह होना चाहिए।[1] नियम मे पवित्रता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान की प्रधानता है।[2] आसन मे[3] ईश्वरीय चिंतन के लिए शरीर की भिन्न-भिन्न स्थितियो का विचार है। शरीर की ऐसी दशा हो जिसमे वह स्थिर होकर हृदय को ईश्वरीय चिंतन के लिए उत्साहित करे। आसन पर अधिकार हो जाने पर योगी शीत और ताप से प्रभावित नही होता।[4] शिवसहिता के अनुसार ८४ आसन है।[5] उनमे से चार मुख्य हैं—सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन। प्रत्येक आसन से शरीर का कोई न कोई भाग शक्तियुक्त बनता है। शरीर रोग-रहित हो

---

[1] तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायनमा
　　　　[पतंजलि योग-सूत्र २—साधनपाद, सूत्र ३०

[2] शौच संतोष तप. स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि
　　　　नियमः [„ „ „ सूत्र ३२

[3] स्थिर सुखमासनम् [„ „ „ सूत्र ४६

[4] ततो द्वन्द्वानभिघातः [„ „ „ सूत्र ४८

[5] चतुरशीत्यासनानि संति नाना विधानि च
　　　　[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक ८४

जाता है।

प्राणायाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राणायाम से तात्पर्य यही है कि वायु-स्नायु या (Vagus Nerve) स्नायु-केन्द्रो पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया कि श्वासोच्छवास की गति नियमित और नाद-युक्त (rhythmic) हो जाय। आसन के सिद्ध हो जाने पर ही श्वास और प्रश्वास की गति नियमित करनेवाले प्राणायाम की शक्ति उद्भासित होती है।[1] प्राणायाम से प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है और मन मे एकाग्रता की योग्यता आ जाती है।[2] प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास की वायु के विशेष नाम है। प्रश्वास (बाहर छोडी जाने वाली वायु) का नाम रेचक है, श्वास (भीतर जाने वाली वायु) को पूरक कहते है और भीतर रोकी जाने वाली कुभक कहलाती है। शिवसहिता मे प्राणायाम करने की आरभिक विधि का सुन्दर निरूपण किया गया है।[3]

फिर बुद्धिमान अपने दाहिने अँगूठे से पिगला (नाक का दाहिना

---

[1]तस्मिन्त्सनि श्वास प्रश्वास योर्गत विच्छेद.

प्राणायाम [पतंजलि योगसूत्र २—साधनपाद, सूत्र ४९

[2]ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् [,, ,, सूत्र ५२

धारणा सु च योग्यता मनस [पतजलि योगसूत्र,

२—साधनपाद, सूत्र ५३

[3]ततश्च दक्षांगुष्ठेन विरुद्धय पिगलां सुधी

इडया पूरयेद्वायु यथाशक्त्या तु कुम्भयेतु

ततस्यक्त् वा पिंगलयाशनैरव न वेगत.

[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक २२

पुन. पिंगल्याऽऽपूर्य यथाशक्त्य तु कुम्भयेत

इडया रेच्येद्वायुं न वेगेन शनै' शनै:

[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक २३

भाग) बद करे। इडा (बाँये भाग) से साँस भीतर खीचे, और इस प्रकार यथाशक्ति वायु अदर ही बद रखे। इसके पश्चात् ज़ोर से नही, धीरे-धीरे दाहिने भाग से साँस बाहर निकाले। फिर वह दाहिने भाग से साँस खीचे, और यथा-शक्ति उसे रोके रहे, फिर बाँये भाग से ज़ोर से नही, धीरे-धीरे वायु बाहर निकाल दे।

प्रत्याहार मे इद्रियाँ अपने कार्यों से अलग हट कर मन के अनुकूल हो जाती है। अपने विषयो की उपेक्षा कर इद्रियाँ चित्त के स्वरूप का अनुकरण करती हैं।[१] साधारण मनुष्य अपनी इद्रियो का दास होता है। इद्रियो के दु:ख से उसे दु:ख होता है और सुख से सुख। योगी इससे भिन्न होता है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम की साधना के बाद वह अपनी इद्रियो को अपने मन के अनुरूप बना लेता है। जब वह नही देखना चाहता तो उसकी आँखे बाह्य पदार्थ के चित्र को ग्रहण ही नही करती, चाहे वे पूर्ण रूप से खुली ही क्यो न हो। जब वह स्वाद नही लेना चाहता तो उसकी जिह्वा सारे पदार्थों का स्वाद-गुण अनुभव ही न करे चाहे वे उस पर रखे ही क्यो न हो। यही नही, वे इद्रिया मन के इतने वश मे हो जाती हैं कि मन की वाछित वस्तुएँ भी वे मन के समक्ष रख देती हैं।[२] यदि मन सगीत सुनना चाहता है तो कर्णेंद्रिय मधुर से मधुर शब्द-तरगो को ग्रहण कर मन के समीप उपस्थित कर देती है। यदि मन सुन्दर दृश्य देखना चाहता है तो नेत्र चित्र-तरगो को ग्रहण कर मन के पटल पर सुन्दर चित्र अकित कर देता है। कहने का तात्पर्य यही है कि इद्रियाँ मन के स्वरूप ही का अनुकरण करने लगती हैं। प्राणायाम से मन तो नियन्त्रित होता ही है, प्रत्याहार

---

[१] स्वविषया संप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणा प्रत्याहार.
[पतंजलि योग-सूत्र, २—साधनपाद, सूत्र ५४

[२] तत: परमावश्यतेन्द्रियाणाम्—
[पतंजलि योगसूत्र, २—साधनपाद, सूत्र ५४

से इंद्रियाँ भी नियन्त्रित हो जाती है।

धारणा मे मन किसी स्थान अथवा वस्तु-विशेष पर दृढ या केंद्रीभूत हो जाता है।[१] नाभि, हृदय, कठ इनमे से किसी एक पर, समय मे मन चक्कर लगाता रहे। यहाँ तक कि वह स्थान चित्र का रूप लेकर स्पष्ट सामने आ जाय।

ध्यान मे अनवरत रूप से वस्तु-विशेष पर चितन कर[२] अन्य विचारो की सीमा से मन को बाहर कर देना होता है। एक ही बात पर निरन्तर रूप से मन की शक्तियो को एकाग्र करने की आवश्यकता है।

धारणा और ध्यान के बाद समाधि आती है। समाधि मे एकाग्रता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। जिस वस्तु-विशेष का ध्यान किया जाता है, उसी वस्तु का आतक सारे हृदय में इस प्रकार हो जाय कि हृदय अपने अस्तित्व ही को भुला दे। केवल एक भाव—एक विचार ही का प्रकाश रह जाय। उसी प्रकाश मे हृदय समा जाय[३] मन शरीर से मुक्त होकर एक अनत प्रकाश मे लीन हो जाय।[४] यही तीनो धारणा, ध्यान, समाधि मिलकर सयम का रूप लेते हैं।[५]

कबीर के 'शब्दो' मे हमें योग के इन आठ अगो का रूप तो मिलता है पर बहुत विकृत। उसमे केवल भाव हैं, उसका स्पष्टीकरण नही है। हम कबीर के 'शब्दो' मे यम का विशेष विवरण पाते है।

---

[१]देश बन्धश्चित्तस्य धारणा—३—विभूतिपाद, सूत्र १

[२]तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्— ” सूत्र २

[३]तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः—
३—विभूतिपाद, सूत्र ३

[४]घटाद्भिन्नं मन कृत्वा ऐक्यं कुर्यात् परात्मनि
समाधिं तं विजानीयान्मुक्त संज्ञो दशादिभि.—
घेरंड संहिता, सप्तमोपदेश, श्लोक ३

[५]त्रयमेकत्र संयम. [पतंजलि योग-सूत्र ३—विभूतिपाद, सूत्र ४

यमः—

(अ) अहिंसा

मांस अहारी मानवा
परतछ राक्षस अङ्ग,
तिनकी सङ्गति मत करो
परत भजन में भङ्ग।
जोरि कर जिबहै करै,
कहते हैं ज हलाल,
जब दफतर देखैगा दई,
तब ह्वैगा कौन हवाल।

(आ) सत्य

साँई सेती चोरिया
चोरा सेती गुझ
जाणैगा रे जीवणा,
मार पड़ेगी तुझ।

(इ) अस्तेय

कबीर तहाँ न जाइये,
जहाँ कपट का हेत,
जालू कली कनीर की
तन राता मन सेत।

(ई) ब्रह्मचर्य

नर नारी सब नरक हैं,
जब लग देह सकाम,
कहैं कबीर ते राम के,
जे सुमिरें निहकाम।

(उ) अपरिग्रह

कबीर तष्ना टोकणी,
लीए फिरे सुभाइ,
राम नाम चीन्हे नहीं,
पीतलि ही के चाइ ।

कबीर ने आसन और प्राणायाम का महत्त्व प्रभावशाली शब्दो में बतलाया है। इसी के द्वारा उन्होंने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि शरीर की शक्तियो को सुसगठित कर उत्तेजित करने से परमात्मा से मिलन हो सकता है। यह बात दूसरी है कि उन्होने धारणा, ध्यान और समाधि पर विशेष नही कहा पर उनके प्राणायाम से यह लक्षित अवश्य हो गया है कि ध्यान और समाधि ही के लिये प्राणायाम की आवश्यकता है। प्राणायाम के अभ्यास से प्राण-वायु के द्वारा शरीर मे स्थित वायुनाडियाँ और चक्र उत्तेजित होते है और उनमे शक्ति आती है। इन्ही वायु-नाडियो और चक्रो मे शक्ति का सचार होने से मनुष्य मे यौगिक शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। शिवसहिता के अनुसार शरीर मे ३,५०,००० नाडियाँ हे। इनके बिना शरीर मे प्राणायाम का कार्य नही हो सकता। दस नाडियाँ अधिक महत्त्व की है। वे ये हैं —

१—इडा— (शरीर की बाईं ओर)
२—पिंगला— (,, दाहिनी ओर)
३—सुषुम्णा— (,, के मध्य मे)
४—गधारी— (बाईं आँख मे)
५—हस्तिजिह्वा— (दाहिनी आँख मे)
६—पुष्प— (दाहिने कान मे)
७—यशस्विनी— (बाये कान मे)
८—अलमबुश— (मुख मे)
९—कुहू— (लिंग स्थान मे)
१०—शखिनी— (मूल स्थान मे)

इन दस नाडियो मे तीन नाडियाँ मुख्य है। इडा, पिंगला और सुषुम्णा। इडा मेरु-दड (Spinal Column) की बाई ओर है। वह सुषुम्णा से लिपटती हुई नाक की दाहिनी ओर जाती है।[१] पिंगला नाडी मेरु-दड की दाहिनी ओर है। वह सुषुम्णा से लिपटती हुई नाक की बाई ओर जाती है।[२] दोनो नाडियाँ समाप्त होने से पहले एक दूसरे को पार कर लेती हैं। ये दोनो नाडियाँ मूलाधार चक्र (गुह्य स्थान के समीप—Plexus of Nerves) से आरभ होती है और नाक मे जाकर समाप्त होती है। ये दोनो नाडियाँ आधुनिक शरीर-विज्ञान मे 'गेंग्लिएटेड कार्ड्स' (Gangliated Chords.) के नाम से पुकारी जा सकती है ?

तीसरी सुषुम्णा इडा और पिंगला के मध्य मे है।[३] उसकी छ' स्थितियाँ हैं, छ शक्तियाँ है, और उसमे छ कमल है। वह मेरु-दड मे से जाती है। वह नाभि-प्रदेश से उत्पन्न होकर मेरु-दड से होती हुई ब्रह्म-चक्र मे प्रवेश करती है। जब यह नाडी कठ के समीप आती है तो दो भागों मे विभाजित हो जाती है। एक भाग तो त्रिकुटी (दोनो भौहो के मध्य स्थान) लोब ऑव इटेलिजेस (Lobe of Intelligence) मे पहुँच कर ब्रह्म-रध्र से मिलता है और दूसरा भाग सिर के पीछे से होता

---

[१]इडा नाम्नी तु या नाडी वाम मार्गे व्यवस्थिता
सुषुम्णाया समाश्लिष्य दक्ष नासापुटे गता
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २५

[२]पिंगला नाम या नाडी दक्ष मार्गे व्यवस्थिता
मध्य नाडीं समाश्लिष्य वाम नासापुटे गता
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २६

[३]इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत्खलु
षट स्थानेषु च षटशक्ति षटपद्मं योगिनो विदु .
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २७

हुआ ब्रह्म-रध्र मे आ मिलता है।[1] योग मे इसी दूसरे भाग की शक्तियों की वृद्धि करना आवश्यक माना गया है। इन तीन नाडियो मे सुषुम्णा बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसी के द्वारा सिद्धि प्राप्त होती है।

इस सुषुम्णा नाडी के निम्न मुख मे कुडलिनी (सर्पाकार दिव्यशक्ति) निवास करती है।[2] जब कुडलिनी प्राणायाम से जागृत हो जाती है, तो वह सुषुम्णा के सहारे आगे बढती है। सुषुम्णा के भिन्न-भिन्न अगो (चक्रो) से होती हुई और उनमे शक्ति डालती हुई वह कुडलिनी ब्रह्म-रध्र की ओर बढती है। जैसे जैसे कुडलिनी आगे बढती है वैसे मन भी शक्तियाँ प्राप्त करता जाता है। अन्त मे जब यह कुडलिनी सहस्र-दल कमल मे पहुँचती है तो सारी यौगिक क्रियाएँ सिद्ध हो जाती हैं और योगी मन और शरीर से अलग हो जाता है। आत्मा पूर्ण स्वतन्त्र हो जाती है।

सुषुम्णा की भिन्न भिन्न स्थितियाँ जिनमे से होकर कुडलिनी आगे बढती है, चक्रो के नाम से पुकारी जाती हैं सुषुम्णा मे छ चक्र है।

सब से नीचे का चक्र बेसिक प्लेक्सस (Basic Plexus) कहलाता है। यह मेरु-दड के नीचे तथा गुह्य और लिंग के मध्य मे रहता है।[3] इसमे चार दल होते हैं। इसका रग पीला माना गया है और इसमे गणेश का रूप ही आराधना का साधन है। इसके चार दल अक्षरो के सयुक्त हैं—व श ष स। इस चक्र मे एक त्रिकोण आकार है

---

[1]दि मिस्टीरियस कुंडलिनी (रेले) पृष्ठ ३६

[2]तत्र विद्युल्लताकारा कुंडली पर देवता
सार्द्धत्रिकरा कुटिला सुषुम्णा मार्ग संस्थिता—
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २३

[3]गुदा द्वयंगुलतश्चोर्ध्वं मेढैकांगुलस्त्वधः
एवं चास्ति समं कंदं समत्वांच्च तुरंगुलम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५

जिसमे कुडलिनी, वेगस नर्व (Vagus Nerve) निवास करती है। उसका शरीर सर्प के समान साढे तीन बार मुडा हुआ है और वह अपने मुख मे अपनी पूछ दबाए हुए है। वह सुषुम्णा नाडी के छिद्र के समीप स्थित है।[१]

उसका रूप इस प्रकार है —
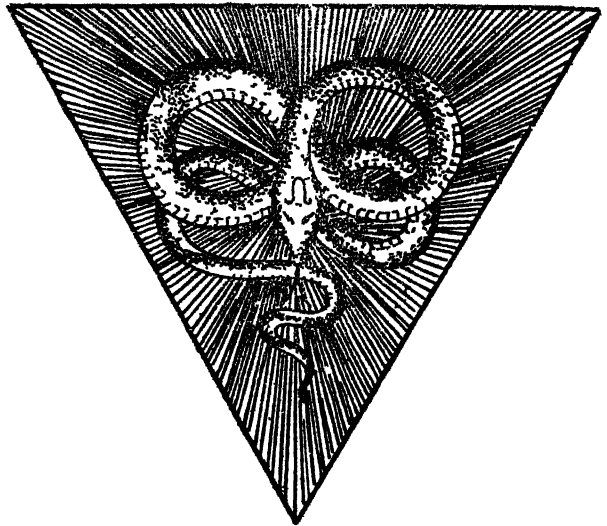
कुंडलिनी

कुंडलिनी, वेगस नर्व (Vagus Nerve) ही हठयोग मे बडी

---

[१]मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णा विवरे स्थिता—

[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५७
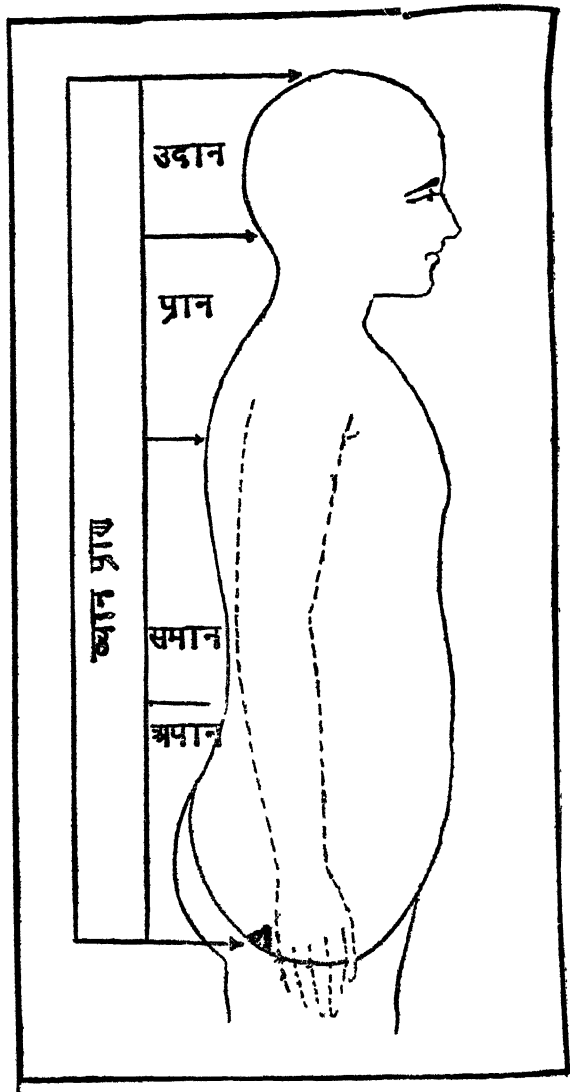
वायु निरूपण.

चित्र १

शक्ति है। वह ससार की सृजन-शक्ति है।[१] वह वाग्देवी है जिसका शब्दो में वर्णन नहीं हो सकता। वह सर्प के समान होती है और अपनी ही ज्योति से आलोकित है।[२] इस कुडलिनी के जागृत होने की रीति समझने के पहले पच-प्राण का ज्ञान आवश्यक है। यह प्राण एक प्रकार की शक्ति है जो शरीर मे स्थिर होकर हमारे शारीरिक कार्यों का संचालन करती है। इसे वायु भी कहते हैं। शरीर के भिन्न-भिन्न भागो मे स्थित होने के कारण इसके भिन्न-भिन्न नाम हो गए हैं। शरीर मे दस वायु हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय।[३] इनमे से प्रथम पाँच मुख्य हैं। प्राण-वायु हृदय-प्रदेश का शासन करती है। अपान नाभि के नीचे के भागो मे व्याप्त है समान नाभि-प्रदेश मे है। उदान कठ मे है और व्यान सारे शरीर मे प्रवाहित है। इसका रूप चित्र १ मे देखिए।

योगी इन सब प्रकार की वायुओ को नाभि की जड से ऊपर उठाता है और प्राणायाम के द्वारा उन्हे साधता है। इन्ही वायुओ की साधना कर सूर्यभेद-कुभक प्राणायाम की विशिष्ट क्रिया द्वारा वह योगी मृत्यु का विनाश करता है और कुडलिनी शक्ति को जागृत करता है।[४] इस

---

[१] जगत्संसृष्टि रूपा सा निर्माणे सतुतोद्यता
वाचाम वाच्या वग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता—
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २४

[२] सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरती प्रभया स्वया...
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५८

[३] प्राणोऽपान समानश्चोदान व्यानौ तथैव च
नाग: कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जय..
[घेरंड संहिता, पंचम उपदेश, श्लोक ६०

[४] कुंभक: सूर्यभेदस्तु जरा मृत्यु विनाशक:
बोधयेत कुण्डलीं शक्तिं देहानलं विवर्धयेत्—
[घेरंड संहिता, पंचम उपदेश, श्लोक ६८

प्रकार कुडलिनी के जागृत करने के लिए इन पच प्राणो के साधन की भी आवश्यकता है। कबीर ने इन वायुओ के सबध मे अनेक स्थानो पर लिखा है :—

तिन बिनु बाणै धनुष चढ़ाइये
इहु जग बेध्या भाई,
दह दिसी बूडी पवन झुलावै
डोरि रही लिव लाई।

+ + +

पृथ्वी का गुण पानी सोष्या
पानी तेल मिलावहिंगे,।
तेज पवन मिलि, पवन सबद मिलि
ये कहि गालि तवावहिंगे।

+ + +

उलटी गंग नीर बहि आया
अमृत धार चुवाई,
पाँच जने सो सँग कर लीन्हे
चलत खुमारी लागी।

+ + +

मूलाधार चक्र पर मनन करने से उस ज्ञानी पुरुष को दरदुरी सिद्धि (मेढक के समान उछलने की शक्ति) प्राप्त होती है और शनै. शनै. वह पृथ्वी को सपूर्णत छोड कर आकाश मे उड सकता है।[१] शरीर का तेज उत्कृष्ट होता है, जठराग्नि बढ़ती है, शरीर रोग-मुक्त हो जाता है, बुद्धि और सर्वज्ञता आती है। वह कारणो के सहित भूत, वर्तमान और भविष्य

---

[१] य: करोति सदा ध्यानं मूलाधारे विचक्षण:
तस्य स्याद्दर्दुरी सिद्धि र्भूमित्यागक्रमेण वै—
[शिवसंहिता, पंचम पटल के ६४, ६५, ६६, ६७ श्लोक

जान जाता है। वह न सुनी गई विद्याओ को उनके रहस्यो सहित जान जाता है। उसकी जीभ पर सदैव सरस्वती नाचती है। वह जपने-मात्र से मत्र-सिद्धि प्राप्त कर लेता है। वह जरा, मृत्यु और अगणित कष्टो को नष्ट कर देता है। उस चक्र का रूप इस प्रकार है :—
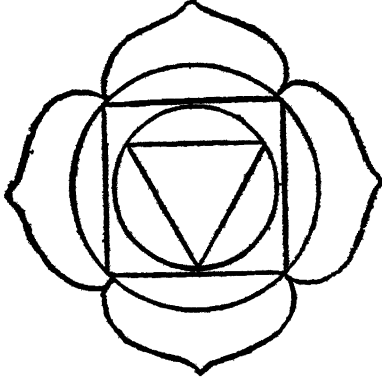
मूलाधार चक्र

(२) स्वाधिष्ठान चक्र

यह चक्र लिंगमूल मे स्थित है।[१] शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे हाइपोगास्ट्रिक प्लेक्सस (Hypogastric Plexus) कह सकते हैं। इसमे छ: दल होते हैं। इसके सकेताक्षर हैं ब, भ, म, य, र, ल। इसका नाम स्वाधिष्ठान चक्र है। यह चक्र रक्त वर्ण है। जो इस चक्र पर चिंतन करता है, उसे सभी सुन्दर देवागनाएँ प्यार करती है। वह विश्व

---

१ द्वितीयंतु सरोजं च लिंगमूले व्यवस्थितम्
बादिलातं च षड्वर्णं परिभास्वर षड्दलम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ७५

भर मे बंधन मुक्त और भय रहित होकर घूमता है। वह अणिमा और लघिमा सिद्धियो का स्वामी बन मृत्यु जीत लेता है।
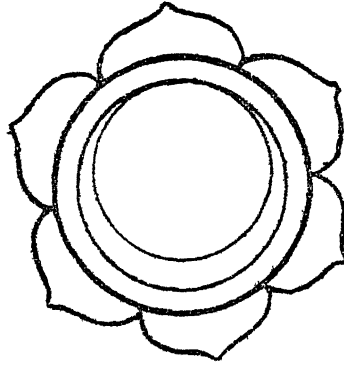
स्वाधिष्ठान चक्र

(३) मणिपूरक चक्र

यह चक्र नाभि के समीप स्थित है। यह सुनहले रंग का है, इसके दस दल हैं। इसके दलो के संकेताक्षर है। ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ। इसे शरीर-विज्ञान के अनुसार कदाचित् सोलर प्लेक्सस (Solar Plexus) कहते हैं। इस चक्र[1] पर चिंतन करने से योगी पाताल (सदा सुख देने वाली) सिद्धि प्राप्त करता है। वह इच्छाओ का स्वामी, रोग और दु.ख का नाशकर्त्ता हो जाता है। वह दूसरे के शरीर मे प्रवेश

---

[1]तृतीयं पंकजं नाभौ मणिपूरक संज्ञकम्
दशारं डाफिकातार्णं शोभितं हेमवर्णकम्।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ७९

कर सकता है। वह स्वर्ण बना सकता है और छिपा हुआ खजाना भी देख सकता है।
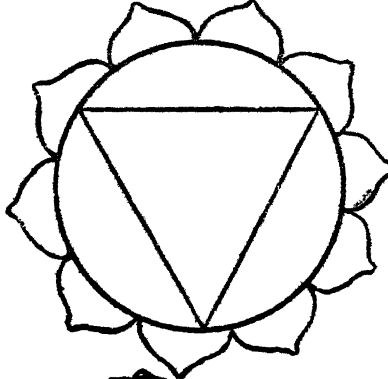
मणिपूरक चक्र

(४) अनाहत चक्र

यह चक्र हृदय-स्थल मे रहता है।[१] इसके बारह दल होते हैं। इसके सकेताक्षर हैं, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ। यह रक्त वर्ण है। शरीर-विज्ञान के अनुसार यह कारडियक प्लेक्सस (Cardiac plexus) कहा जा सकता है। जो इस चक्र पर चिंतन करता है वह अपरिमित ज्ञान प्राप्त करता है। भूत, भविष्य और वर्त्तमान जानता

---

[१] हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पंकजं भवेत्।
कादिठान्तार्थ संस्थानं द्वादशारसमन्वितम्।
अतिशोणं वायु बीजं प्रसादस्थानमीरितम्॥
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ८३

है। वह वायु मे चल सकता है, उसे खेचरी शक्ति (आकाश मे जाने की शक्ति) मिल जाती है। इस चक्र का रूप इस प्रकार है —
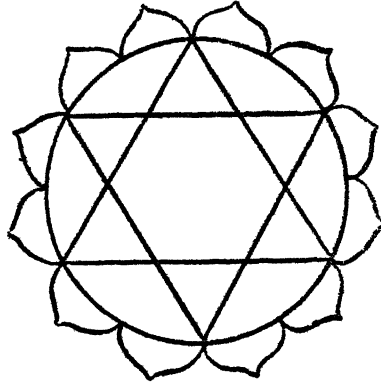
अनाहत चक्र

कबीर इस चक्र के विषय मे कहते हैं :—

द्वादस दल अभिअन्तर म्यंत,
तहाँ प्रभु पाइसि कर लै च्यंत।
अमिलन मलिन धरह् नहीं छाहां,
दिवसे न राति नहीं है ताहाँ। शब्द ३२८

(५) विशुद्ध चक्र

यह चक्र कंठ मे स्थित है।[१] इसका रंग देदीप्यमान स्वर्ण की भाँति है। इसमे १६ दल हैं, यह स्वर-ध्वनि का स्थान है। इसके सकेताक्षर है, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

---

[१] कंठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नामपंचमम्।
सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वर संयुतम्॥
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ९०

शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे फैरिंगील प्लेक्सस (Pharyngeal Plexus) कह सकते है। जो इस चक्र पर चिन्तन करता है वह वास्तव मे योगेश्वर हो जाता है। वह चारो वेदो को उनके रहस्यो के साथ समझ सकता है। जब योगी इस स्थान पर अपना मन केन्द्रित कर क्रुद्ध होता है तो तीनो लोक कॉप उठते हैं। वह इस चक्र पर ध्यान करते ही बहिर्जगत का परित्याग कर अन्तर्जगत मे रमने लगा है। उसका शरीर कभी निर्बल नही होता और वह १,००० वर्ष तक शक्ति-सहित जीवन व्यतीत करता है।
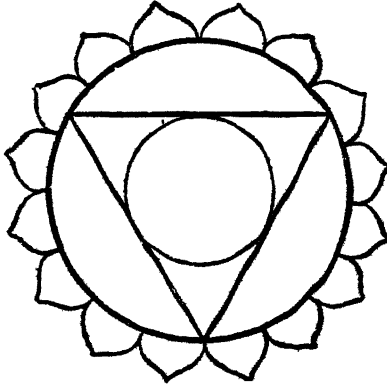
विशुद्ध चक्र

(६) आज्ञा चक्र

यह चक्र त्रिकुटी (भौहो के मध्य) मे स्थित है।[1] इसमे दो दल

---

[1] आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम्
शुक्लाभं त महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ९६

हैं, इसका रग श्वेत है, सकेताक्षर ह और क्ष है। शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे केवरनस प्लेक्सस (Cavernous Plexus) कह सकते हैं। यह प्रकाश-बीज है, इस पर चिंतन करने से ऊँची से ऊँची
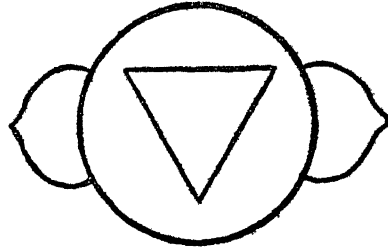
अज्ञा चक्र

सफलता मिलती है।[१] इसके दोनों ओर इडा और पिंगला हैं वही मानो क्रमश: वरणा और असी है और यह स्थान वाराणसी है। यहाँ विश्वनाथ का वास है।

कुण्डलिनी सुषुम्णा के छ चक्रो मे से होती हुई ब्रह्म-रध्र पहुँचती है। वहाँ सहस्र-दल कमल है, उसके मध्य मे एक चन्द्र है। उस त्रिकोण भाग से जहा चन्द्र है, सदैव सुधा बहती है। वह सुधा इडा नाडी द्वारा प्रवाहित होती है। जो योगी नही है, उनके ब्रह्म-रध्र से जो अमृत प्रवाहित होता है उसका शोषण मूलाधार चक्र मे स्थित सूर्य द्वारा[२] हो जाता है और इस प्रकार वह नष्ट हो जाता है। इससे शरीर

---

[१] एतदेव परंतेज: सर्वतन्त्रेषु मात्रिण. ।
चिन्तयित्वा सिद्धि लभते नात्र संशय ।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ९८

[२] मूलधारे हि यत्पद्म चतुष्पत्रं व्यवस्थितम् ।
तत्र मध्यहि या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थित ।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १०६
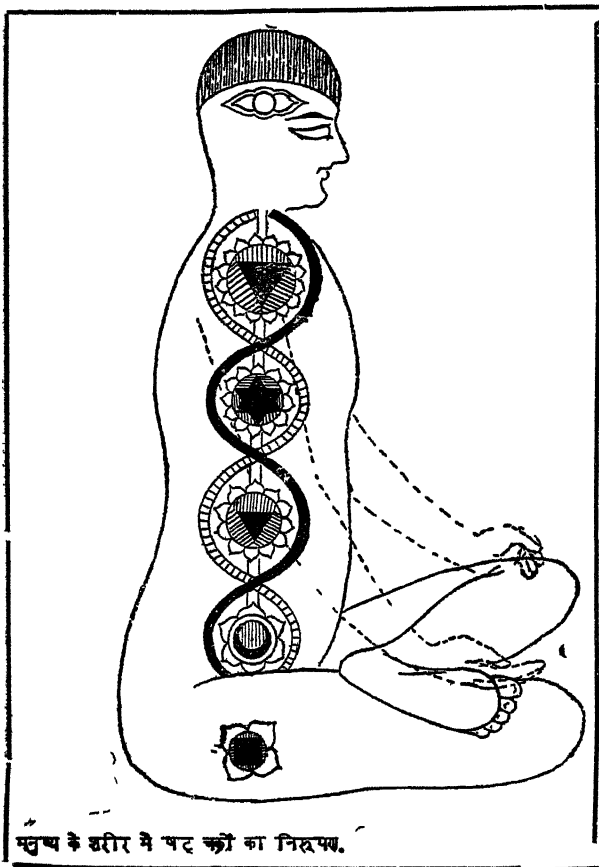
नाडियों सहित मनुष्य के शरीर मे षट् चक्र

चित्र २

वृद्ध होने लगता है। यदि साधक इस प्रवाह को किसी प्रकार रोक दे और सूर्य से शोषण न होने दे तो उस सुधा को वह अपने शरीर की शक्तियो की वृद्धि करने मे लगा सकता है। उस सुधा के उपयोग से वह अपना सारा शरीर जीवन की शक्तियो से भर लेगा और यदि उसे तक्षक सर्प भी काट ले तो उसके सर्वांग मे विष नही फैल सकता।[१]

सहस्र-दल कमल तालु-मूल मे स्थित है।[२] वही पर सुषुम्णा का छिद्र है। यही ब्रह्म-रंध्र कहलाता है। तालु-मूल से सुषुम्णा का नीचे की ओर विस्तार है।[३] अन्त मे वह मूलाधार चक्र मे पहुचती है। वहीं से कुडलिनी जाग्रत होकर सुषुम्णा मे ऊपर बढ़ती है और अन्त मे ब्रह्म-रंध्र मे पहुचती है। ब्रह्म-रंध्र मे ब्रह्म की स्थिति है जिसका ज्ञान योगी सदैव प्राप्त करना चाहता है। इस रंध्र मे छः दरवाजे है जिन्हे कुडलिनी ही खोल सकती है। इस रंध्र का रूप विंदु (०) रूप है। इसी स्थान पर 'प्राण-शक्ति' संचित की जाती है। प्राणायाम की उत्कृष्ट स्थिति मे इसी विंदु मे आत्मा ले जाई जाती है। इसी विंदु मे आत्मा शरीर से स्वतन्त्र होकर 'सोऽहं' का अनुभव करती है। मनुष्य के शरीर मे षट्चक्रो का निरूपण चित्र २ मे देखिए।

कबीर ने अपने शब्दो मे इन चक्रों का वर्णन विस्तार से तो नहीं किंतु साधारण रूप से किया है। उदाहरणार्थ एक पद लीजिए :—

---

[१] हठयोग प्रदीपिका पृष्ठ ५३

[२] अत उर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम्
अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १२०

[३] तालुमूले सुषुम्णा सा अधोवक्त्रा प्रवर्तते—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक, १२१

(ब्रह्म-रंध्र के विंदु पर)

ब्रह्म अगनि मे काया जारै,
त्रिकुटी संगम जागै,
कहै कबीर सोई जोगेस्वर,
सहज सुन ल्यो लागै ।

कबीर ग्रथावली, शब्द ६९

सहज सुन्न इक बिरवा उपजा
धरती जलहर सोख्या,
कहि कबीर हो ताका सेवक
जिन यहु बिरवा देख्या ।

शब्द १०८

जन्म मरन का भय गया,
गोविन्द लव लागी,
जीवत सुन्न समानिया,
गुरु साखी जागी ।

शब्द ७३

रे मन बैठि किते जिन जासी ।
उलटि पवन षट चक्र निवासी,
तीरथ राज गग तट वासी ।
गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा,
उलटी कूँची लाग किवारा ।
कहै कबीर भया उजियारा,
पंच मारि एक रह्यो निनारा ।

प्राणायाम की साधना की सफलता धारणा, ध्यान और समाधि के रूप मे पहिचान कर कबीर ने उनका एक साथ ही वर्णन कर दिया है। हम कबीर को योग-शास्त्र का पूर्ण पडित उनके केवल सत्सग ज्ञान से नही मान सकते । धारणा, ध्यान, और समाधि का समिश्रण हम उनके रेखतो मे

व्यापक रूप से पाते हैं। न तो उन्होने धारणा का ही स्वरूप निर्धारित किया है और न ध्यान एव समाधि ही का। तीनो की 'त्रिवेनी' उन्होने एक साथ ही प्रवाहित कर दी है। इस स्थल को समझने के लिए उनके वे रेख़ते जिनमे उन्होने प्राणायाम के साथ धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया है उद्धृत करना अयुक्तिसगत न होगा।

देख वोजूद में अजब बिसराम है
होथ मौजूद तो सही पावै,
फेरि मन पवन को घेरि उलटा चढ़े
पाँच पच्चीस को उलटि लावै।
सुरत का डोर सुख सिंध का झूलना
घोर की सोर तहँ नाद गावै,
नीर बिन कंवल तह देखि अति फूलिया
कहै कब्बीर मन भँवर छावै।
चक्र के बीच मे कंवल अति फूलिया
तासु का सुक्ख कोई संत जानै,
क़ुलुफ़ नौ द्वार औ पवन का रोकना
तिरकुटी मद्ध मन भँवर आनै,
सबद की घोर चहूँ ओर ही होत है
अधर दरियाव को सुक्ख मानै,
कहै कब्बीर यो झूल सुख सिंध में
जन्म और मरन का भर्म भानै।
गंग और जमुन के घाट को खोजि ले
भँवर गुंजार तहँ करत भाई,
सरसुती नीर तह देखु निर्मल बहै
तासु के नीर पिये प्यास जाई,
पाच की प्यास तहं देखि पूरी भई
तीन ताप तहं लगे नाहीं,

कहै कब्बीर यह अगम का खेल है
गेब का चादना देख माँही।
गडा निस्सान तहँ सुच के बीच में
उलटि के सुरत फिर नहिं आवै,
दूध को मत्थ करि घिर्त न्यारा किया
बहुरि फिर तत्त में ना समावै,
माड़ि मत्थात्त तहँ पाँच उलटा किया
नाम नोनीति लै सुक्ख फेरी,
कहै कब्बीर यो सन्त निर्भय हुआ
जन्म और मरन की मिटी फेरी।

सूफ़ीमत और कबीर

रहस्यवाद का अंतिम लक्ष्य है आत्मा और परमात्मा का मिलन। इस मिलन मे एक बात आवश्यक है। वह आत्मा की पवित्रता है। यदि आत्मा मे ईश्वर से मिलने की उत्कट आकाक्षा होने पर भी पवित्रता नही है तो परमात्मा का मिलन नहीं हो सकता। आत्मा की सारी आकाक्षा घनीभूत होकर पवित्रता की समता नही कर सकती। पवित्रता मे जो शक्ति है वह आकाक्षा मे कहाँ? आकाक्षा न होने पर भी पवित्रता दैवी गुणो का आविर्भाव कर सकती है। उसमे आध्यात्मिक तत्व की वे शक्तियाँ अंतर्निहित है जिनसे ईश्वर की अनुभूति सहज ही मे हो सकती है। यह पवित्रता उन विचारो से बनती है जिनमे वासना, छल, कुरुचि और अस्तेय का बहिष्कार है। वासना का कलुषित व्यभिचार हृदय को मलीन न होने दे। छल का व्यवहार मन के विचारो को विकृत न होने दे! कुरुचि का जघन्य पाप हृदय की प्रवृत्तियो को बुरे मार्ग पर न ले जाय और अस्तेय का आतक हृदय मे दोषो का समुदाय एकत्रित न कर दे? इन दोषो के आतक से निकल कर जब आत्मा अपनी प्राकृतिक क्रिया करती हुई जीवन के अग प्रत्यग मे प्रकाशित होती है तो उसका वह आलोक पवित्रता के नाम से पुकारा जाता है। यह पवित्रता ईश्वरीय मिलन के लिये आवश्यक सामग्री है। जलालुद्दीन रूमी ने यही बात अपनी मसनवी के ३४६० वे पद्य मे लिखी है, जिसका भावार्थ यह है कि 'अपने अहम् की विशेषताओ से दूर रह कर पवित्र बन, जिससे तू अपना मैल से रहित उज्जवल तत्व देख सके।'

यह पवित्रता केवल बाह्य न हो आतरिक भी होनी चाहिए। स्नान कर चदन तिलक लगाना पवित्रता का लक्षण नहीं है। पवित्रता का लक्षण है हृदय की निष्कपट और निरीह भावना। उसी पवित्रता से

ईश्वर प्रसन्न होता है। तभी तो कबीर ने कहा —

कहा भयो रचि स्वाँग बनायो,
अंतरजामी निकट न आयो।
कहा भयो तिलक गरैं जपमाला,
मरम न जानैं मिलन गोपाला॥
दिन प्रति पसू करै हरिहाई,
गरै काठ बाकी बान न आई।
स्वाँग सेत करणी मनि काली,
कहा भयो गलि माला घाली।
बिन ही प्रेम कहा भयो रोए,
भीतरि मैलि बाहरि कहा धोए।
गलगल स्वाद भगति नहीं धीर,
चीकन चँदवा कहै कबीर।

सारी वासनाओ को दूर कर हृदय को शुद्ध कर लो, यही परमात्मा से मिलन का मार्ग है। उसी पवित्र स्थान मे परमात्मा निवास करता है जो दर्पण के समान स्वच्छ और पवित्र है, कु-वासनाओ की कालिमा से दूर है। रूमी ने ३४५९ वे पद्य मे कहा है —'साफ किये हुए लोहे की भाँति जग के रग को छोड दे, अपने तापस-नियोग से जग-रहित दर्पण बन।' इसी विषय की विवेचना मे उसने चित्र-कला के सबध मे ग्रीस और चीन वालो के वाद-विवाद की एक मनोरञ्जक कहानी भी दी है, उसे यहाँ लिख देना अनुपयुक्त न होगा।

चित्रकला मे ग्रीस और चीनवालों के वाद-विवाद की कहानी

चीनवालो ने कहा—"हम लोग अच्छे कलाकार है।" ग्रीसवालो ने कहा—"हम लोगो मे अधिक उत्कृष्टता और शक्ति है।"

३४६८, सुलतान ने कहा—"इस विषय मे तुम दोनो की परीक्षा लूँगा। और तब यह देखूँगा कि तुममे से कौन अधिकार मे सच्चा उतरता है।"

३४६९, चीन और ग्रीसवाले वाग्युद्ध करने लगे, ग्रीसवाले विवाद से हट गये।

३४७०, तब चीनियो ने कहा—"हमे कोई कमरा दे दीजिये और आप लोग भी अपने लिए एक कमरा ले लीजिये।"

३४७१, दो कमरे थे जिनके द्वार एक दूसरे के समुख थे। चीनियो ने एक कमरा ले लिया, ग्रीसवालो ने दूसरा।

३४७२, चीनियो ने राजा से विनय की, उन्हे सौ रग दे दिये जायँ। राजा ने अपना खज़ाना खोल दिया कि वे (अपनी इच्छित वस्तुएँ) पा जायँ।

३४७३, प्रत्येक प्रातः राजा की उदारता से, खज़ाने की ओर से चीनियो को रग दे दिये जाते।

३४७४, ग्रीसवालो ने कहा—"हमारे काम के लिये कोई रग की आवश्यकता नही, केवल जग छुडाने की आवश्यकता है।"

३४७५, उन्होने दरवाजा बद कर लिया और साफ करने मे लग गए वे (वस्तुएँ) आकाश की भाँति स्वच्छ और पवित्र हो गईं।

३४७६, अनेक रगता की शून्य की ओर गति है, रग बादलो की भाँति है और शून्य रग चद्र की भाँति।

३४७७, तुम बादलो मे जो प्रकाश और वैभव देखते हो, उसे समझ लो कि वह तारो, चद्र और सूर्य से आता है।

३४७८, जब चीन वालो ने अपना काम समाप्त कर दिया, वे अपनी प्रसन्नता की दुंदुभी बजाने लगे।

३४७९, राजा आया और उसने वहाँ के चित्र देखे। जो दृश्य उसने वहाँ देखा, उससे वह अवाक् रह गया।

३४८०, उसके बाद वह ग्रीसवालो की ओर गया, उन्होने बीच का परदा हटा दिया है।

३४८१, चीनवालो के चित्रो का और उनके कला-कार्यों का प्रतिबिंब इन दीवारो पर पडा जो जग से रहित कर उज्ज्वल बना दी

गई थी।

३४८२, जो कुछ उसने वहाँ (चीनवालो के कमरे मे) देखा था, यहाँ और भी सुन्दर जान पडा। मानो आँख अपने स्थान से छीनी जा रही थी।

३४८३, ग्रीसवाले, ओ पिता! सूफी है। वे अध्ययन, पुस्तक और ज्ञान से रहित (स्वतत्र) है।

३४८४, किन्तु उन्होने अपने हृदय को उज्ज्वल बना लिया है और उसे लोभ, काम, लालच और घृणा से रहित कर पवित्र बना लिया है।

३४८५, दर्पण की वह स्वच्छता ही निस्सदेह हृदय है, जो अंगणित चित्रो को ग्रहण करता है।

इस प्रकार आत्मा के पवित्र हो जाने पर उसमे परमात्मा के मिलने की क्षमता आती है।

आध्यात्मिक यात्रा के प्रारभ मे यद्यपि आत्मा परमात्मा से अलग रहती है, पर जैसे-जैसे आत्मा पवित्र बन कर ईश्वर से मिलने की आकाक्षा मे निमग्न होने लगती है वैसे-वैसे उसमे ईश्वरीय विभूतियो के लक्षण स्पष्ट दीखने लगते है। जब आत्मा परमात्मा के पास पहुँचती है तो उस दिव्य सयोग मे वह स्वय परमात्मा का रूप रख लेती है। रूमी ने अपनी मसनवी के १५३१वे और उसके आगे के पद्यो मे लिखा है—

जब लहर समुद्र मे पहुँची, वह समुद्र बन गई। जब बीज खेत मे पहुँची वह शस्य बन गया।

जब रोटी जीवधारी (मनुष्य) के सपर्क मे आई तो मृत रोटी जीवन और ज्ञान से परिप्रोत हो गई।

जब मोम और इंधन आग को समर्पित किये गए तो उनका अधकार मय अन्तर-तम भाग जाज्वल्यमान हो गया।

जब सुरमे का पत्थर भस्मीभूत हो नेत्र मे गया तो वह दृष्टि मे परिवर्तित हो गया और वहाँ वह निरीक्षक हो गया।

ओह, वह मनुष्य कितना सुखी है जो अपने से स्वतंत्र हो गया है और एक सजीव के अस्तित्व मे सम्मिलित हो गया है।

कबीर ने इसी विचार को बहुत परिष्कृत रूप मे रक्खा है। वे यह नही कहते कि जब लहर समुद्र मे पहुँची तो समुद्र बन गई, पर वे यह कहते हैं कि हम इस प्रकार दिखेंगे जैसे तरगिनी की तरग, जो उसी में उत्पन्न होकर उसी मे मिलती है। रूमी तो कहता है कि जब तरग समुद्र मे पहुँची तब वह समुद्र बनी। पहले वह समुद्र अथवा समुद्र का भाग नही थी। कबीर का कथन है कि तरग तो सदैव तरगिनी मे वर्तमान है। उसी मे उठती और उसी मे गिरती है—

> **जैसे जलहि तरंग तरंगिनी,**
> **ऐसे हम दिखलावहिंगे।**
> **कहै कबीर स्वामी सुख सागर,**
> **हसहि हंस मिलावहिंगे॥**

ऐसे स्थिति मे संसार के बीच आत्मा ही परमात्मा का स्वरूप ग्रहण करती है। आत्मा की सेवा मानो परमात्मा की सेवा है और आत्मा का स्पर्श मानो परमात्मा का स्पर्श है। आत्मा संसार मे उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार परमात्मा की विभूति ससार के अग-प्रत्यग मे निवास करती रहती है। आत्मा मे एक प्रकार की शक्ति आ जाती है जिसके द्वारा वह मनुष्यता को भूल कर विश्व की बृहत् परिधि मे विचरण करने लगती है। वह मनुष्यता को पाप के कलुषित आतक से बचाती है, पाप का निवारण करने लगती है और जो व्यक्ति ईश्वर विमुख है अथवा धार्मिक पथ के प्रतिकूल है उसे सदैव सहारा देकर उन्नति की ओर अग्रसर करती है। वह आत्मा जो ईश्वर के आलोक से आलोकित है, अन्य आत्माओ की अधकारमयी रजनी मे प्रकाश ज्योति बन कर पथ-प्रदर्शन करती है। उसमे फिर यह शक्ति आ जाती है कि वह संसार के भौतिक साधनो की नश्वरता को समझ कर आध्यात्मिक साधनो का महत्त्व लोगो के सामने रूपको की भाषा मे रखने लगे। उसी समय

आत्मा लोगो के सामने उच्च स्वर मे कह सकती है कि मैं परमात्मा हूँ। मेरे ही द्वारा अस्तित्व का तत्व पृथ्वी पर वर्तमान है, यही रहस्यवाद की उत्कृष्ट सफलता है।

आत्मा के ईश्वरत्व की इस स्थिति को जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी मे एक कहानी का रूप दिया है। वह इस प्रकार है :—

ईश्वरत्व

शेख़ बायज़ीद हज्ज (बडी तीर्थ-यात्रा) और उमरा (छोटी तीर्थ-यात्रा) के लिये मक्का जा रहा था।

जिस जिस नगर मे वह जाता वहाँ पहले वहाँ के महात्माओ की खोज करता।

—वह यहाँ वहाँ घूमता और पूछता, शहर मे ऐसा कौन है जो (दिव्य) प्रतद्दृष्टि पर आश्रित है ?

—ईश्वर ने कहा है—अपनी यात्रा मे जहाँ कही तू जा, पहले तू महात्मा की खोज अवश्य कर। ख़ज़ाने की खोज मे जा क्योकि सासारिक लाभ और हानि का नबर दूसरा है। उन्हे केवल शाखाए समझ, जड नही।

उसने एक वृद्ध देखा जो नये चद्र की भाँति झुका हुआ था, उसने उस मनुष्य मे महात्मा का महत्व और गौरव देखा।

—उसकी आँखो मे ज्योति नही थी, उसका हृदय सूर्य के समान जगमगा रहा था जैसे वह एक हाथी हो जो हिन्दुस्तान का स्वप्न देख रहा हो।

—आँखें बद कर सषुप्त बन वह सैकडो उल्लास देखता है। जब वह आँखें खोलता है, तो उन उल्लासो को नहीं देखता। ओह, कितना आश्चर्य है !

—नीद मे न जाने कितने आश्चर्य-जनक-व्यापार दृष्टिगत होते है, नीद मे हृदय एक खिडकी बन जाता है।

—जो जागता है और सुदर स्वप्न देखता है वह ईश्वर को जानता है। उसके चरणो की धूल अपनी आँखो मे लगाओ।

—वह बायज़ीद उसके सामने बैठ गया और उसने उसकी दशा के विषय मे पूछा, उसने उसे साधू और गृहस्थ दोनो पाया।

उसने (वृद्ध मनुष्य ने) कहा—ओ बायज़ीद, तू कहाँ जा रहा है ? अपरिचित प्रदेश मे किस स्थान पर अपनी यात्रा का सामान ले जा रहा है ?

—बायजीद ने कहा—प्रातः मैं काबा के लिये रवाना हो रहा हूँ "ये" दूसरे ने कहा—"रास्ते के लिए तेरे पास क्या सामान है ?"

—"मेरे पास दो सौ चाँदी के दिरहम हैं" उसने कहा—"देखो वे मेरे अँगरखे के कोने मे बँधे हैं।"

—उसने कहा—"सात बार मेरी परिक्रमा कर ले और इसे अपनी तीर्थ-यात्रा काबे की परिक्रमा से अच्छा समझ।"

—"और वे दिरहम मेरे सामने रख दे, ऐ उदार सज्जन ! समझ ले कि तूने काबा से अच्छी तीर्थ-यात्रा कर ली है और तेरी इच्छाओ की पूर्ति हो गई है।"

—"और तूने छोटी तीर्थ-यात्रा भी कर ली, अनत जीवन को प्राप्ति कर ली। अब तू साफ हो गया।"

—"सत्य (ईश्वर) के सत्य से, जिसे तेरी आत्मा ने देख लिया है, मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि उसने अपने अधिवास से भी ऊपर मुझे चुन रखा है।"

—"यद्यपि काबा उसके धार्मिक कर्मो का स्थान है, मेरा यह आकार भी जिसमे मैं उत्पन्न किया गया था, उसके अतरतम चित् का स्थान है।"

"जब से ईश्वर ने काबा बनाया है वह वहाँ नही गया अमेरेरा इस मकान मे चित् (ईश्वर) के अतिरिक्त कोई कभी नही गया।"

—"जब तूने मुझे देख लिया, तो तूने ईश्वर को देख लिया। तूने

पवित्रता के काबा की परिक्रमा कर ली है।"

—"मेरी सेवा करना, ईश्वर की आज्ञा मान कर उसकी कीर्ति बढाना है खबरदार, तू यह मत समझना कि ईश्वर मुझसे अलग है।"

—"अपनी आँख अच्छी तरह से खोल और मेरी ओर देख, जिससे तू मनुष्य मे ईश्वर का प्रकाश देखे।"

बायज़ीद ने इन आध्यात्मिक वचनो की ओर ध्यान दिया। अपने कानो मे स्वर्ण-बालियो की भाँति उन्हे स्थान दिया।

कबीर ने इसी भावना को निम्नलिखित पद्य मे व्यक्त किया है —

हम सब माँहि सकल हम माँही,
हम थें और दूसरा नाहीं।
तीन लोक मे हमारा पसारा,
आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरशन कहियत भेखा,
हमही अतीत रूप नही रेखा।
हम ही आप कबीर कहावा,
हमही अपना आप लखावा।

जब आत्मा परमात्मा की सत्ता मे इस प्रकार लीन हो जाती है तब उसमे एक प्रकार का मतवालापन आ जाता है। वह ईश्वर के नशे मे चूर हो जाता है। ससार के साधारण मनुष्य जो उस मतवालेपन को नही जानते उसकी हँसी उडाते है। वे उसे पागल समझते हैं। वे क्या जाने उसे मस्त बना देने वाले आध्यात्मिक मदिरा के नशे को, जिसमे संसार को भुला देने की शक्ति होती है। रूमी ने ३४२६ वें और उसके आगे के पद्यो मे लिखा है.—

जब मतवाला व्यक्ति मदिरालय से दूर चला जाता है वह बच्चो के हास्य और कौतुक की सामग्री बन जाता है। जिस रास्ते वह जाता है, कीचड में गिर पडता है, कभी इस ओर कभी उस ओर। प्रत्येक मूर्ख उस पर हँसता है। वह इस प्रकार चला जाता है और उसके पीछे चलने वाले

अनत सयोग

(अवशेष)

इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का सयोग हो जाता है। आत्मा बढ़ कर अपने को परमात्मा तक खीच ले जाती है। जरसन ने तो इसी के सहारे रहस्यवादी की मीमासा की थी। उन्होने कहा था— रहस्यवादी की अभिव्यक्ति उसी समय होती है जब आत्मा प्रेम की अमूल्य निधि लिए हुए परमात्मा मे अपना विस्तार करती है। पवित्र और उमग भरे प्रेम से परिचालित आत्मा का परमात्मा मे गमन ही तो रहस्यवाद कहलाता है।' डायोनिसस एक कदम आगे बढ कर कहते हैं परमात्मा से आत्मा का अत्यत गुप्त वाग्-विलास ही रहस्यवाद है।[१] डायोनिसस ने आत्मा को परमात्मा तक जाने का कष्ट ही नही दिया। उन्होंने केवल खडे-खडे ही आत्मा और परमात्मा मे बातचीत करा दी।

इसी प्रकार रहस्यवाद की अन्य विलक्षण परिभाषाएँ है, जिनसे हम जान सकते हैं कि रहस्यवाद की अनुभूति भिन्न प्रकार से विविध रहस्यवादियो के हृदय मे हुई है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने तो आत्मा और परमात्मा के मिलन मे दोनो को उत्सुक बतलाया है। यदि आत्मा परमात्मा से मिलना चाहती है तो परमात्मा भी आत्मा से मिलने की इच्छा रखता है। वे इसी भाव को अपनी 'आवर्तन' शीर्षक कविता मे इस प्रकार लिखते हैं —

धूप आपनारे मिलाइते चाहे गन्धे,
गन्धो शे चाहे धूपेरे रोहिते जुड़े।

---

[१]स्टडीज़ इन मिस्टिसिज्म, लेखक ए० वेट, पृष्ठ २७६

शूर आपनारे धोरा दिये चाहे छोंदे,
छोद फिरिया छूटे लेते चाय शूरे।
भाव पेते चाय रूपेरे माझारे अङ्गो,
रूपो पेते चाय भावेरे माझारे छाडा।
ओसीम शे चाहे शीमार निबिड शंगो,
शीमा चाय होते ओशीमेरे माझे हारा।
प्रोलये इचजने ना जानि ए कारे जुक्ति,
भाव होते रूपे ओविराम जाओया आशा।
बन्ध फिरछे खूजिया आपोन मुक्ति,
मुक्ति मागिछे बाधोनेर माझे बाशा।

इसका अर्थ यही है कि—

धूप (एक सुगधित द्रव्य) अपने को सुगधि के साथ मिला देना चाहता है,

गध भी अपने को धूप के साथ सबद्ध कर देना चाहती है।

स्वर अपने को छद मे समर्पित कर देना चाहता,

छंद लौट कर स्वर के समीप दौड जाना चाहता है।

भाव सौंदर्य का अग बनना चाहता है,

सौंदर्य भी अपने को भाव की अतरात्मा मे मुक्त करना चाहता है।

असीम ससीम का गाढ़ालिगन करना चाहता है,

ससीम असीम मे अपने को बिखरा देना चाहता है।

मैं नही जानता कि प्रलय और सृष्टि किसका रचना-वैचित्र्य है,

भाव और सौदर्य मे अविराम विनिमय होता है।

बद्ध अपनी मुक्ति खोजता फिरता है,

मुक्त बधन मे अपने आवास की भिक्षा माँगता है।

सभी रहस्यवादी एक प्रकार से परमात्मा का अनुभव नही कर सके। विविध मनुष्यो मे मानसिक प्रवृत्तियाँ विविध प्रकार से पाई जाती है। जिन मनुष्यो की मानसिक प्रवृत्तियाँ अधिक सयत और अभ्यस्त होगी वे

परमात्मा का ग्रहण दूसरे ही रूप मे करेंगे, जिन मनुष्यो की मानसिक प्रवृत्तियाँ परिष्कृत न होगी वे रहस्यवाद की अनुभूति अस्पष्ट रूप मे करेंगे। जिनकी मानसिक प्रवृत्तियाँ ससार के बन्धन से रहित हो पवित्रता और पुण्य के प्रशात वायुमडल मे विराजती है वे ईश्वर की अनुभूति मे स्वय अपना अस्तित्व खो देगे। इन्ही प्रवृत्तियो के अन्तर के कारण परमात्मा की अनुभूति मे अन्तर हो जाता है और इसीलिए रहस्यवाद की परिभाषाओ मे अतर आ जाता है।

परमात्मा के सयोग मे एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। जब आत्मा परमात्मा मे लीन होती है तो उसके चारो ओर एक दैवी वातावरण की सृष्टि हो जाती है और आत्मा परमात्मा की उपस्थिति अपने समीप ही अनुभव करने लगती है। परमात्मा ससार से परे है और आत्मा ससार से आबद्ध । इस सासारीय वातावरण मे आत्मा को ज्ञात होने लगता है मानो समीप ही कोई बैठा हुआ शक्ति सचार कर रहा है। आत्मा चुपचाप उस रहस्यमयी शक्ति से साहस और बल पाती हुई इस ससार मे स्वर्ग का अनुभव करती है। मारगेरेट मेरी ने रोलिन को जो पत्र लिखा था, उसका भावार्थ यही था

"दिव्य त्राणकर्त्ता ने मुझसे कहा, मैं तुझे एक नई विभूति दूँगा। वह विभूति अभी तक दी हुई विभूतियो से उत्कृष्ट होगी। वह विभूति यही है कि मैं तेरी दृष्टि से कभी ओझल न होऊँगा। और विशेषता यह रहेगी कि तू सदैव मेरी उपस्थिति अनुभव करेगी।

मैं तो समझती हूँ अभी तक उन्होने अपनी दया से मुझे जितनी विभूतियाँ प्रदान की है, उन सभो से यह विभूति श्रेष्ठतर है। क्योकि उसी समय से उस दिव्य परमात्मा की उपस्थिति अविराम रूप से मै अनुभव कर रही हूँ। जब मे अकेली होती हूँ तो यह दिव्य उपस्थिति मेरे हृदय मे इतनी श्रद्धा उत्पन्न करती है कि मैं अभिवादन के लिए पृथ्वी पर गिर पडती हूँ, जिससे मैं अपने त्राणकारी ईश्वर के सामने अपने को अस्तित्वहीन कर दूंगा। मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि ये सब विभूतियाँ

अटल शाति और उल्लास से पूर्ण है।"[१]

इस पत्र से यह ज्ञात हो जाता है कि उत्कृष्ट ईश्वरीय विभूतियो का लक्षण ही यही है कि उसमे परमात्मा के सामीप्य का परिचय उसी क्षण मिल जाय। उस समय आत्मा की क्या स्थिति होती है? वह आनद मे विभोर होकर परमात्मा की शक्तियो मे अपना अस्तित्व मिला देती है, वह उत्सुकता से दौड कर परमात्मा की दिव्य उपस्थिति मे छिप जाती है। उस समय उसकी प्रसन्नता, उत्सुकता और आकाक्षा की परिधि इन काले अक्षरो के भीतर नही आ सकती। विलियम राल्फ इज ने अपनी पुस्तक 'पर्सनल आइडियलिज्म एड मिस्टिसिज्म' मे उस दशा के वर्णन करने का प्रयत्न किया है —

"इस दिव्य विभूति और शाति के दर्शन का स्वागत करने के लिए आत्मा दौड जाती है, जिस प्रकार बालक अपने पिता के घर को पहिचान कर उसकी ओर सहर्ष अग्रसर होता है।"[२]

ज्यों बालक अपने पिता के घर का रास्ता भूल जाय, वह यहाँ वहाँ भटकता फिरे उसे कोई सहारा न हो, उसी समय उसे यदि पिता के घर का रास्ता मिल जाय अथवा पिता का घर दीख पडे तो उसके हृदय मे कितनी प्रसन्नता होगी! उसी स्थिति की प्रसन्नता आत्मा मे होती है, जब वह अपने पिता के समीप पहुँचने का द्वार पा जाती है।

उस स्थिति मे उसके हृदय की तत्री झनझना उठती है। रोम से— प्रत्येक रोम से एक प्रकार की सगीत-ध्वनि निकला करती है। वह सगीत उस के यश मे, उसी आदि-शक्ति के दर्शन-सुख मे उत्पन्न होता है

---

[१] द प्रेसेज ऑव् इटीरियर प्रेयर—पुलेन, पृष्ठ ८५

[२] The human soul leaps forward to greet this is vision of glory and harmony, as a child recognises and greets his father's house.

पर्सनल आइडियलिज्म मिस्टिसिज़्म, पृष्ठ १६

और आत्मा के सपूर्ण भाग मे अनियन्त्रित रूप से प्रवाहित होने लगता है। यही सगीत मानो आत्मा का भोजन है। इसीलिए सूफियो ने इस सगीत का नाम मिज़ाये रुह रक्खा है। इसी के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम मे पूर्णता आती है। यह सगीत आध्यात्मिक प्रेम की आग को और भी प्रज्वलित कर देता है और इसी तेज से आत्मा जगमगा उठती है।

इस सगीत मे परमात्मा का स्वर होता है। उसी मे परमात्मा के अलौकिक प्रेम का प्रकाशन होता है। इसलिए शायद लियोनार्ड (१८१९—१८८७) ने कहा था :—

"मेरे स्वामी ने मुझसे कहा था कि मेरे प्रेम की ध्वनि तुम्हारे कान मे प्रतिध्वनित होगी। उसी प्रकार, जिस प्रकार मेघ से गर्जन की ध्वनिगूंज जाती है। दूसरी रात मे, वास्तव मे, अलौकिक प्रेम के तूफान का प्रकोप (यदि इस शब्द मे कुछ वैषम्य न हो) मुझ पर बरस पडा। उसका तीव्र वेग, जिस सर्वशक्ति से उसने मेरे सारे शरीर पर अधिकार जमा लिया, अत्यत गाढ़ और मधुर आलिंगन, जिससे ईश्वर ने आत्मा को अपने मे लीन कर लिया, सयोग के किसी अन्य हीन रूप से समता नही रखता।"

लियोनार्ड ने इसे 'तूफान के प्रकोप' से समता दी है। वास्तव मे उस समय प्रेम इतने वेग से शरीर और मन की शक्तियो पर आक्रमण करता है कि उससे वे एक ही बार निस्तब्ध होकर शिथिल हो जाते हैं। उस समय उस शरीर मे केवल एक भावना का प्रवाह होता है। शरीर की शक्तियो मे केवल एक ज्योति जागृत रहती है और वह ज्योति होती है अलौकिक प्रेम के प्रबल आवेग की। यह आवेग किसी भी सासारिक भावना के आवेग से सदैव भिन्न है। उसका कारण यह है कि सासारिक भावना का आवेग क्षणिक होता है और उसकी गहराई कम होती है। यह अलौकिक आवेग स्थायी रहता है और उसकी भावना इतनी गहरी होती है कि उससे शरीर की सभी शक्तियाँ ओत-प्रोत हो जाती हैं।

उसका वर्णन 'तूफान के प्रकोप' द्वारा ही किया जा सकता है, किसी अन्य शब्द द्वारा नही।

उस प्रेम के प्रबल आक्रमण मे एक विशेषता रहती है। जिसका अनुभव टामसन ने पूर्ण रूप से किया था। उसने 'आन दि साइट एड एस्पेशली आन दि कानटैक्ट विथ दि सावरेन गुड'[१] वाले परिच्छेद मे लिखा था कि हम ईश्वर को हृदयगम करते है अपने आतरिक और रहस्यमय स्पर्श द्वारा। हम यह अनुभव करते है कि वह हम मे विश्राम कर रहा है। यह आतरिक (अथवा उसे दिव्य भी कह सकते है) सबध बहुत ही सूक्ष्म और गुप्त कला है, और इसे हम अनुभव द्वारा ही जान सकते हैं, बुद्धि द्वारा नही।

जब आत्मा को यह अनुभव होने लगता है कि परमात्मा मुझमे विश्राम कर रहा है तो उसमे एक प्रकार के गौरव की सृष्टि हो जाती है। जिस प्रकार एक दरिद्र के पास सौ रुपये आ जाने पर वह उन्हे अभिमान तथा गर्व से देखता है, उनकी रक्षा करता है। स्वय उपभोग नही करता वरन् उन्हे देख-देख कर ही सतोष कर लेता है, ठीक उसी प्रकार, आत्मा परमात्मा रूपी धन को अपनी अन्तरंग भावनाओ मे छिपाए, ससार मे गर्व और अभिमान से रहती है तथा ससार के मनुष्यो की हँसी उडाती है, उन्हें तुच्छ गिनती है। ऐसी अवस्था मे एक अंतर रहता है। गरीब का धन मूक होता है, उसमे बोलने अथवा अनुभव करने की शक्ति ही नही होती। पर परमात्मा की बात दूसरी है। वह प्रेम के महत्त्व को जानता है तथा उसे अनुभव करता है। उसमे भी प्रेम का प्रबल प्रवाह होता है, वह भी आत्मा के सयोग से सुखी होता है। उस समय जब आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है तो परमात्मा आत्मा मे प्रकट होकर ससार मे घोषित करने लगता है —

मुझको कहाँ ढूँढै बदे,
मैं तो तेरे पास मे।' (कबीर)

---

[१]पुलेन रचित, दि ग्रेसेज ऑव् इन्टीरियर प्रेयर, पृष्ठ १०७

परिशिष्ट

क

रहस्यवाद से सम्बन्ध रखनेवाले कबीर के

कुछ चुने हुए पद

चलौ सखी जाइये तहाँ, जहाँ गये पाइयें परमानंद।
यहु मन आमन धूमना,
मेरौ तन छीजत नित जाइ।
चिंतामणि चित्त चोरियौ,
तार्थें कछु न सुहाइ।
सुनि सखि सुपने की गति ऐसी,
हरि आये हम पास
सोवत ही जगाइया,
जागत भये उदास।
चलु सखी बिलम न कीजिये,
जब लगि सास सरीर,
मिलि रहिये जगनाथ सूँ,
यूँ कहैं दास कबीर।

वाल्हा आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब को कहै तुम्हारी नारी
मोको इहै अदेह रे,
एकमेक ह्वै सेज न सोवै
तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै, नीद न आवै
ग्रिह बन धरै न धीर रे,
ज्यूं कामी को काम पियारा,
ज्यूं प्यासे कूं नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी,
हरिसूं कहै सुनाइ रे,
ऐसे हाल कबीर भये हैं,
बिन देखें जिय जाय रे।

वै दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारनि हम देह धरी है,
मिलिबौ अंग लगाइ।
हौं जानूं जे हिल मिल खेलूं
तन मन प्रान समाइ,
या कामना करौ परपूरन,
समरथ हौ राम राइ।
माँहि उदासी माधौ चाहै,
चितवत रैन बिहाइ,
सेज हमारी सिंध भई है,
जब सोऊँ तब खाइ।
यहु अरदास दास की सुनिये,
तन की तपति बुझाइ,
कहै कबीर मिलै जे साईं,
मिलि करि मंगल गाइ।

दुलहिनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रति करि हूँ,
पंच तत्त बराती,
रामदेव मोरे पाहुने आए,
मैं जोबन मैं माती।
सरीर सरोवर बेदी करि हूँ,
ब्रह्म बेद उचार,
रामदेव संगि भावर लेहूँ,
धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीसूँ कौतिग आए,
मुनिवर सहस अठासी,
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं,
पुरिष एक अविनासी।

हरि मेरा पीव माई हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सके मेरा जीव।
हरि मेरा पीव मै हरि की बहुरिया,
राम बडे मैं छुटक लहुरिया।
किया स्यंगार मिलन के ताई,
काहे न मिलो राजा राम गुसाई।
अब की बेर मिलन जो पाऊं,
कहै कबीर भौजल नहि आऊं।

किये सिंगार मिलन के ताईं,
हरि न मिले जग जीवन गुसाईं।
हरि मेरो पि रहो हरि की बहुरिया।
राम बडे मैं तनक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा,
सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै,
कहि कबीर फिर जनमि न आवै।

अवधू ऐसा ज्ञान विचारी
ताथें भई पुरिष थे नारी।
ना हूँ परनी ना हूँ क्वारी
पूत जन्यू द्यौ हारी,
काली मूड को एक न जोड्यो
अजहूँ अकन कुवारी।
ब्राह्मन के ब्रह्मनेटी कहियो
जोगी के घरि चेली,
कलिमा पढ़ि पढ़ि भई तुरकनी
अजहूँ फिरो अकेली।
पीरहि जाऊँ न रहूँ सासुरै
पुरषहि अंगि न लाऊँ,
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो
अंगहि अंग न छुवाऊँ।

मैं सासने पीव गौंहनि आई
साईं संग साध नहीं पूगी
गयो जोबन सुपिना की नाईं।
पंच जना मिल मंडप छायो
तीनि जना मिलि लगन लिखाई,
सखी सहेली मंगल गावैं
सुख दुख माथै हलद चढ़ाई।
नाना रंगें भांवरि फेरी
गांठि जोरि बैठे पति ताईं,
पूरि सुहाग भयो बिन दूल्हा
चौक कै रंगि धर्यो सगो भाई।
अपने पुरिष मुख कबहुं न देख्यो
सती होत समझी समझाई,
कहै कबीर हूं सर रचि मरिहूं
तिरौं कन्त लै तूर बजाई।

कब देखूं मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही।
हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वामी,
कब रे मिलहुगे अंतरजामी।
जैसे जल बिन मीन तलपै,
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै,
दरस पियासी राम क्यो सचुपावै।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै
अपनो जानि मोहि दरसन दीजै।

हरि कौ बिलोवनों बिलोइ मेरी माई,
ऐसौ बिलोइ जैसे तत न जाई।
तन करि मटकी मनहिं बिलोइ,
ता मटकी में पवन समोइ।
इला प्यंगुला सुषमन नारी,
वेगि बिलोइ ठाढी छछिहारी।
कहै कबीर गुजरी बौरानी
मटकी फूटी जोति समानी।

भलैं नींदौ भलैं नींदौ भलैं नींदौ लोग
तन मन राम पियारे जोग।
मैं बौरी मेरे राम भतार,
ता कारनि रचि करौं सिंगार।
जैसे धुबिया रज मल धोवै,
हर तप रत सब निंदक खोवै।
निंदक मेरे माई बाप,
जन्म जन्म के काटे पाप।
निंदक मेरे प्रान अधार,
बिन बेगारि चलावै भार।
कहै कबीर निंदक बलिहारी,
आप रहै जन पार उतारी।

जो चरखा जरि जाय बढ़ैया न मरै।
मैं कातों सूत हजार चरखुला जिन जरै।
बाबा मोर ब्याह कराव अच्छा बरहिं तकाय,
जौ लौं अच्छा वर न मिलै तौ लौं तुमहिं बिहाय।
प्रथमें नगर पहूँचते परि गौ सोग संताप,
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप।
समधी के घर समधी आए आए बहू के भाय,
गोडे चूहा दै दै चरखा दियो दिढाय,
देव लोक मर जायँगे एक न मरै बढ़ाय,
यह मन रंजन कारणै चरखा दियो दिढाय,
कहहिं कबीर सुनौ हो संतो चरखा लखै जो कोय,
जो वह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय।

परौसनि मागे कंत हमारा।
पीव क्यूँ बौरी मिलही उधारा।
मासा मागे रती न देऊँ,
घटै मेरा प्रेम तो कासनि लेउं।
राखि परोसनि लरिका, मोरा,
जे कछु पाउं सु आधा तोरा।
बन बन ढूँढ़ौं नैन भरि जोऊँ,
पीव न मिलै तो बिलखि करि रोऊँ।
कहै कबीर यहु सहज हमारा,
बिरलो सुहागिन कंत पियारा।

हरि ठग जग की ठगौरी लाई।
हरि के वियोग कैसे जीऊँ मेरी माई।
कौन पुरिष को काको नारी,
अभिअंतर तुम्ह लेहु बिचारी।
कौन पूत को काको बाप,
कौन मरे कौन करे संताप।
कहै कबीर ठग सों मन माना,
गई ठगौरी ठग पहिचाना।

को बीनै प्रेम लागो री, माई को बीनै।
राम रसायन माते री, माई को बीनै।
पाई पाई तू पुतिहाई,
पाई की तुरिया बेच खाई री, माई को बीनै।
ऐसे पाई पर बिथुराई,
त्यूं रस आनि बनाओ री, माई को बीनै।
नाचै ताना नाचै बाना,
नाचै कूंच पुराना री, माई को बीनै।
करगहि बैठि कबीरा नाचै
चूहै काट्या ताना री, माई को बीनै।

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये
भाग बड़े घर बैठे आये।
मंगलचार माहि मन राखौं;
राम रसायन रसना चाखौं।
मंदिर माहि भया उजियारा,
लै सूती अपना पीव पियारा।
मैं रे निरासी जै निधि पाई,
हमहि कहा यहु तुमहि बडाई।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा,
सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा।

अब मोहिं ले चल नणद के बीर,
अपने देसा।
इन पंचन मिलि लूटी हूँ
कुसंग आहि बिदेसा।
गंग तीर मोरि खेती बारी
जमुन तीर खरिहाना,
सातो बिरही मेरे नीपजे
पंचू मोर किसाना।
कहै कबीर यहु अकथ कथा है
कहता कही न जाई,
सहज भाइ जिहि ऊपजै
ते रमि रहै समाई।

मेरे राम ऐसा खीर बिलोइयै।
गुरु मति मनुवा अस्थिर राखहु
इन विधि अमृत पिओइयै।
गुरु कै बाणि बजर कल छेदी
प्रगटय पद परगासा,
शक्ति अधेर जेवडी भ्रम चूका
निहचल सिव घर वासा।
तिन बिनु बाणैं धनुष चढाइयै
इहु जग बेध्या भाई,
दह दिसि पड़ी पवन झुलावै
डोरि रही लिव लाई।
उनमन मनुवा सुन्नि समाना
दुविधा दुर्मति भागी,
कहु कबीर अनुभौ इकु देख्या
राम नाम लिव लागी।

उलटि जात कुल दोऊ बिसारी,
सुन्न सहज महि बुनत हमारी।
हमारा झगरा रहा न कोऊ,
पंडित मुल्ला छाडे दोउ,
बुनि बुनि आप आप पहिरावों,
जहं नहीं आप तहाँ ह्वै गावों।
पंडित मुल्ला जो लिखि दीया,
छांड़ि चले हम कछू न लीया,
रिदै खलासु निरखि ले मीरा,
आपु खोजि खोजि मिलै कबीरा।

जन्म मरन का भ्रम गया गोविन्द लव लागी।

जीवन सुन्न समानिया
गुरु साखी जागी।
कासी ते धुनि उपजै
धुनि कासी जाई,
कासी फूटी पंडिता
धुनि कहाँ समाई।
त्रिकुटी संधि में पेखिया
घटहू घट जागी,
ऐसी बुद्धि समाचारी
घट माँहि तियागी।
आप आपते जानिया
तेज तेज समाना,
कहु कबीर अब जानिया
गोविन्द मन माना।

गगन रसान चुए मेरी भाठी।
संचि महारस तन भय काठी।
वाकौ कहिए सहज मतिवारा,
जीवत राम रस ज्ञान विचारा।
सहज कलालनि जौ मिलि आई।
आनंदि माते अनदिन जाई।
चीन्हत चीत निरंजन लाया,
कहु कबीर तौ अनुभव पाया।

अब न बसूँ इहि गाइ गुसाइँ,
तेरे नेवगी खरे सयाने हो राम।
नगर एक यहा जीव धरम हता
बसैं जु पंच किसाना,
नैनू निकट श्रवनूं रसनूं
इंद्री कह्या न माने हो राम।
गाइकु ठाकुर खेत कुनापै
काइथ खरज न पारै
जौरि जेवरी खेति पसारै
सब मिलि मोको मारै हो राम।
खोटो महतो बिकट बलाही
सिर कसदम का पारै
बुरौ दिवान दानि नहिं लागै
इक बाधैं इक मारै हो राम।
धरम राइ जब लेखा मागा
बाकी निकसी भारी,
पाचि, किसाना भजि गये हैं
जीव धर बाध्यो पारी हो राम।
कहै कबीर सुनहु रे संतो
हरि भजि बाध्यो भेरा,
अब की बेर बकसि बंदे कों
सब खत करौं निबेरा।

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ़ा मगन रस पीवै त्रिभुवन भया उजियारा।
गुड़ करि ग्यान ध्यान कर महूवा
भव भाठी कर भारा,
सुषमन नारी सहज समानी
पीवै पीवन हारा।
दोइ पुड़ जोडि चिगाई भाठी
चुया महा रस भारी,
काम क्रोध दोइ किया पलीता
छूटि गई संसारी।
सुन्नि मंडल में मंदला बाजै
तहा मेरा मन नाचै,
गुर प्रसादि अमृत फल पाया
सहजि सुषमना काछै।
पूरा मिल्या तबैं सुष उपज्यो
तन की तपति बुझानी
कहै कबीर भव बंधन छूटै
जोतिहि जोति समानी।

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरे सदा सुख उपजै
बक नालि रस पीवै।
मूल बाधि सर गगन समाना
सुषमन यों तन लागी,
काम क्रोध दोउ भया पलीता
तहा जोगिनी जागी।
मनवां जाइ दरीबे बैठा
मगन भया रसि लागा,
कहै कबीर जिय संसा नाहीं
सबद अनाहद जागा।

कोई पीवै रे रस राम नाम का, जो पीवै सौ जोगी रे।
संतो सेवा करो राम की और न दूजा भोगी रे।
यहु रस तौ सब फीका भया
ब्रह्म अगनि पर जारी रे,
ईश्वर गौरी पीवन लागे राम तनी मतवारी रे!
चंद सूर दोउ भाठी कीन्हीं सुषमनि-त्रिगवा लागी रे,
अमृत कूंपी साचा पुरया मेरी त्रिष्णा भागी रे।
यहु रस पीवै गूंगा गहिला ताकी कोई बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महंगा कोई पीवैगा पीवनि हार रे।

दूभर पनिया भरया न जाई।
अधिक त्रिषा हरि बिन न बुझाई।
ऊपर नीर लेज तलिहारी,
कैसे नीर भरै पनिहारी।
ऊघर्यो कूप घाट भयो भारी,
चली निरास पंच पनिहारी।
गुर उपदेस भरीले नीरा,
हरषि हरषि जल पीवै कबीरा।

लावौ बाबा आगि जलावो घरा रे।

ता कारनि मन धंधौ परा रे।

इक डाइनि मेरे मन में बसे रे,

नित उठि मेरे जीय को डसे रे।

ता डाइनि के लरिका पाँच रे,

निसि दिन मोहि नचावें नाच रे।

कहै कबीर हूँ ताकौं दास,

डाइनि के संग रहै उदास।

रे मन बैठि किते जिनि जासी।
हिरदै सरोवर है अविनासी।
काया मधे कोटि तीरथ
काय मधे कासी।
काया मधे कंवलपति
काय मधे बैकुंठवासी
उलटि पवन षटचक्र निवासी
तीरथराज गंग तट वासी।
गगनमंडल रवि ससि दोई तारा
उलटी कूंची लाग किवारा।
कहै कबीर भयो उजियारा
पंच मारि एक रह्यो निनारा

सरवर तटि हंसिनों तिसाई।
जुगति बिना हरि जल पिया न जाई।
पिया चाहै तौ लै खग सारी,
उड़ि न सकै दोऊ पर भारी।
कुंभ लियें ठाढ़ी पनिहारी,
गुण बिन नीर भरै कैसे नारी।
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई,
सहज सुभाई मिलै रांम राई।

बोलो भाई राम की दुहाई।
इहि रस सिव सनकादिक माते, पीवत अजहू न अघाई।
इला प्यंगुला भाठी कीन्ही ब्रह्म अगिनि परजारी,
ससि हर सूर द्वार दस मूँदे, लागी जोग जुग तारी।
मति मतवाला पीवै राम रस, दूजा कछु न सुहाई,
उलटी गंगा नीर बहि आया अमृत धार चुवाई।
पंच जने सो संग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी,
प्रेम पियाले पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी।
सहज सुन्नि में जिन रस चाख्या, सतगुरु थैं सुधि पाई,
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई।

विष्णु ध्यान सनान करि रे
बाहरि अंग धोइ रे।
साच बिन सीझसि नही
कोई ज्ञान दृष्ट जोइ रे।
जंजाल माहे जीव राखै
सुधि नहीं सरीर रे,
अभिअंतरि भेदै नहीं
कोइ बाहिर न्हावै नीर रे।
निहक्रर्म नदी ज्ञान जल
सुन्नि मंडल माहि रे,
औधूत जोगी आतमा
कोई पेडे संजमि न्हानि रे।
इला प्यंगुला सुषमनां
पछिम गंगा बालि रे,
कहै कबीर कुसमल झड़ै
कोई माहि लौ अंग पषालि रे।

जंगल में का सोवना, औघट है घाटा ।
स्यंघ बाघ गज प्रजल्लै, अरु लंबी बाटा ।
निसि बासुरी पेंडा पडै
जमदानी लूटै,
सूर धीर साचै मतै
सोइ जन छूटै ।
चालि चालि मन माहरा
पुर पटन गहिये,
मिलिये त्रिभुवन नाथ सो
निरभै होइ रहिए
अमर नहीं संसार में
बिनसै नर देही,
कहै कबीर बेसास सूं
भजि राम सनेही ।

राम बिन तन की ताप न जाई

जल की अगिन उठी अधिकाई।

तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीना,

जल में रहो जलहिं बिन छीना।

तुम्ह पिंजरा मैं सुवना तोरा,

दरसन देहु भाग बड़ मोरा

तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,

कहै कबीर राम रमूं अकेला।

राम बान अन्ययाले तीर।
जाहि लागे सो जाने पीर।
तन मन खोजो चोट न पाऊं।
औषद मूली कहाँ घसि लाऊं।
एकहि रूप दीसे सब नारी,
न जानो को पियहि पियारी।
कहै कबीर जा मस्तक भाग,
न जानु काहू देइ सुहाग।

भंवर उडे बग बैठे आई।
रैन गई दिवसो चलि जाई।
हल हल कांपै बाला जीव,
ना जानो का करि है पीउ।
काँचे बासन टिकै न पानी,
उड़िगै हंस काया कुँभिलानी।
काग उडावत भुजा पिरानी,
कहहि कबीर यह कथा सिरानी।

देखि देखि जिय अचरज होई।
यह पद बूझै बिरला कोई।
धरती उलटि अकासै जाय,
चिउटी के मुख हस्ति समाय।
बिना पवन सो पर्वत उडे,
जीव जंतु सब बृक्षा चढे।
सूखे सरवर उठे हिलोरा,
बिनु जल चकवा करत किलोरा,
बैठा पंडित पढे पुरान,
बिना देखे का करत बखान।
कहहि कबीर यह पद को जान,
सोई संत सदा परबान।

मैं सबनि में औरनि में हूँ सब
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो ।
कोई कहौ कबीर कोई राम राई हो ।
ना हम बार बूढ नाहीं हम
ना हमरे चिलकाई हो,
पठरा न जाऊँ अरबा नहीं आऊँ
सहजि रहूँ हरिभाई हो ।
बोढ़न हमरे एक पछेबरा
लोक बोलैं इकताई हो,
जुलहै तनि बुनि पान न पावल
बारि बुनी दस ढाई हो ।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल
तब हमरौ नाउं राम राई हो,
जग में देखौं जग न देखै मोही
इहि कबीर कछु पाई हो ।

अब मैं जाणि बौरे केवल राइ की कहानी।
मंझा जोति राम प्रकासै
गुर गभि बाणीं।
तरबर एक अनंति मूरति
सुरता लेहु पिछाणीं,
साखा पेड़ फूल फल नाहीं
ताकी अमृत बाणी।
पुहप वास भँवरा एक राता
बारा ले उर धरिया,
सोलह मंझै पवन झकोरै
आकासे फल फलिया।
सहज समाधि बिरष यहु सींचा
धरती जलहर सोष्या,
कहै कबीर तास मैं चेला
जिनि यहु तरबर पेष्या।

अवधू, सो जोगी गुरु मेरा,
सो या पद का करै निबेरा।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा
बिन फूला फल लागा,
साखा पत्र कछू नहीं वाके
अष्ट गगन मुख बागा।
पैर बिन निरति करां बिन बाजै
जिभ्या हींणा गावै,
गावणहारे कै रूप न रेषा
सतगुरु होइ लखावै।
पंखी का खोज, मीन का मारग
कहै कबीर बिचारी,
अपरंपार पार परसोतम।
वा मूरति की बलिहारी।

अजहूँ बीच कैसे दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मानें क्यो मेरा।
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजाना,
दुइ मैं दोस कहौ किहै रामा।
तुम्ह कहियत त्रिभुवन पति राजा,
मन बांछित सब पुरवन काजा।
कहै कबीर हरि दरस दिखाओ,
हमहिं बुलाओ कै तुम्ह चलि आओ।

आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जिऊंगा।
गुरु के सबद मैं रमि रमि रहूँगा।
आप कटोरा आप थारी,
आपै पुरखा आपै नारी
आप सदाफल आपै नींबू,
आपै मुसलमान आपै हिन्दू।
आपै मछकछ आपै जाल,
आपै भींवर आपै काल।
कहै कबीर हम नाहीं रे नाहीं,
न हम जीवत न मुवले नांही।

अकथ कहानी प्रेम की
कछू कही न जाई,
गूंगे केरि सरकरा
बैठे मुसकाई ।
भोमि बिना अरु बीज बिन
तरवर एक भाई
अनंत फल प्रकासिया
गुरु दीया बताई ।
मन थिर बैसि बिचारिया
रामहि ल्यौ लाई,
झूठी मन मे बिस्तरी
सब थोथी बाई ।
कहै कबीर सकति कछू नाहीं
गुरु भया सहाई,
आवण जाणी मिटि गई,
मन मनहि समाई ।

लोका जानि न भूलो भाई।
खालिक खलिक खलक में
खालिक सब घट रह्यो समाई।
अला एकै नूर उपनाया
ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं सब जग कीया
कौन थला कौन मंदा।
ता अला की गति नहीं जानी
गुरि गुड़ दीया मीठा,
कहै कबीर मैं पूरा पाया
सब घट साहिब दीठा

है कोई गुरज्ञानी जग उलटि बेद बूझै,
पानी मे पावक बरै, अंधहि आख न सूझै।
गाई तो नाहर खायो, हरिन खायो चीता,
काग लंगर फाँदि कै बटेर बाज जीता।
मूस तो मजार खायो, स्यार खायो स्वाना,
आदि कोऊ उदेश जाने, तासु बेश बाना
एकहि दादुर खायो, पाच खायो भुवंगा,
कहहि कबीर पुकार के है दोऊ एकै संगा।

मैं डोरे डोरे जाऊंगा, तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
सूत बहुत कुछ थोरा, तार्थें ले कंथा डोरा,
कंथा डोरा लागा, जब जुरा मरण भौ भागा,
जहाँ सूत कपास न पूनी, तहाँ बसे एक मूनी,
उस मूनी सूंचित लाउंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आउंगा।
मेरा डंड इक छाजा, तहाँ बसै इक राजा
तिस राजा सूं चित लाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
जहा बहु हीरा धन मोती, तहाँ तत लाइ ले जोती,
तिस जोतिहि जोति मिलाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
जहाँ ऊगै सूर न चंदा, तहाँ देष्या एक अनंदा,
उस आनंद सूं चित लाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
मूल बंध एक पाया, तहाँ सिह गणेश्वर राजा,
तिस मूलहि मूल मिलाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
कबीर तालिब तोरा, तहाँ गोपाल हरी गुर मोरा,
तहा हेत हरी चित लाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।

अब घट प्रगट भये राम राई।
सोधि सरीर कंचन की नाई।
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा,
सोधि सरीर भयो तन सारा।
उपजत उपजत बहुत उपाई,
मन थिर भयो तबै थिति पाई।
बाहर खोजत जनम गंवाया,
उनमना ध्यान घट भीतर पाया।
बिन परचै तन काच कथीरा,
परचै कंचन भया कबीरा।

हम सब माँहि सकल हम माँही।
हम थैं और दूसरा नाही।
तीन लोक मे हमारा पसारा,
आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरसन कहियत हम भेखा,
हमहीं अतीत रूप नहीं रेखा।
हमहीं आप कबीर कहावा,
हमहीं अपना आप लखावा।

बहुरि हम काहे कू आवहिंगे ।
बिछुरे पंचतत्त की रचना
तब हम रामहिं पावहिंगे ।
पृथ्वी का गुण पानी सोष्या
पानी तेज मिलावहिंगे ।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि
ये कहि गालि तवावहिंगे ।
ऐसे हम जो वेद के बिछुरे
सुन्नहि माँहि समावहिंगे ।
जैसे जलहि तरंग तरंगनी
ऐसे हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर
हसहि हंस मिलावहिंगे ।

दरियाव की लहर दरियाव है जी
दरियाव और लहर में भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है बैठे तो नीर है
कहो दूसरा किस तरह होयम।
उसी नाम को फेर के लहर धरा
लहर के कहे क्या नीर खोयम।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में
ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम।

है कोई दिल दरवेश तेरा।
नासूत मलकूत जबरूत को छोडिके
जाइ लाहूत पर करै डेरा।
अकिल की फहम ते इलम रोसन करै
चढ़ै खरसान तब होय उजेरा,
हिर्स हैवान को मारि मरदन करै
नफस सैतान जब होय जेरा।
गौस और कुतुब दिल फिकर जाका करै
फतह कर किला तहं दौर फेरा,
तखत पर बैठिके अदल इनसाफ कर
दोजख और भिस्त का करु निवेरा।
अजाब सवाब का सबब पहुँचे नहीं
जहाँ है यार महबूब मेरा,
कहै कब्बीर वह छोड़ि आगे चला
हुआ असवार तब दिया दरेरा।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै।
हीरा पायो गाठ गठियायो
बार बार वाको क्यो खोलै।
हलकी थी जब चढी तराजू
पूरी भई तब क्यो तोलै।
सुरत कलारी भई मतवारी
मदवा पी गई बिन तोलै।
हंसा पाये मान सरोवर
ताज तलैया क्यों डोलै।
तेरा साहब है घट माही
बाहर नैना क्यो खोलै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
साहिब मिल गये तिल ओलै।

तोरी गठरी मे लागे चोर
बटोहिया का रे सोवै।
पाच पचीस तीन हैं चुरवा
यह सब कीन्हा सोर,
बटोहिया का रे सोवै।
जागु सबेरा बाट अनेडा
फिर नहि लागै जोर,
बटोहिया का रे सोवै।
भवसागर इक नदी बहतु है
बिन उतरे जाव बोर,
बटोहिया का रे सोवै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
जागत कीजै भोर,
बटोहिया का रे सोवै।

पिया मोरा जागै मैं कैसे सोई री।
पाँच सखी मेरे संग की सहेली
उन रङ्ग रङ्गी पिया रङ्ग न मिली री।
सास सयानी ननद द्योरानी
उन डर डरी पिय सार न जानी री।
द्वादस ऊपर सेज बिछानी
चढ़ न सकौं मारी लाज लजानी री।
रात दिवस मोहि फूका मारै
मैं न सुना रचि रहि सङ्ग जानी री।
कह कबीर सुनु सखी सयानी
बिन सतगुर पिय मिले न मिलानी री।

ये अँखियाँ अलसानी हो,
पिय सेज चलो।
खंभ पकरि पतंग अस डोलै
बोलै मधुरी बानी।
फूलन सेज बिछाय जो राख्यो
पिया बिना कुंभिलानी।
धीरे पाँव धरो पलंगा पर
जागत ननद जिठानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
लोक लाज बिलछानी।

नैहरवा हमका नहिं भावै।
सांई की नगरी परम अति सुन्दर
जहं कोइ जाय न आवै।
चांद सुरज जहं पवन न पानी
को संदेश पहुंचावै।
दरद यह सांई को सुनावै।
आगे चलौं पंथ नहिं सूझै
पीछे दोस लगावै।
केहि विधि ससुरे जाउं मोरी सजनी
बिरहा जोर जनावै।
बिषै रस नाच नचावै।
बिन सतगुरु अपनी नहिं कोई
जो यह राह बतावै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
सुपने न प्रीतम पावै।
तपन यह जिय की बुझावै।

पिय ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली ।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया
लगी नाम की डोरिया ।
चांद सुरज सम दियना बरत हैं
ता बिच भूली डगरिया ।
पाँच पचीस तीन घर बनिया
मनुआँ है चौधरिया ।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान को
चहुं दिसि लगी बजरिया ।
आठ मरातिब दस दरवाजे
नौ में लगी किवरिया ।
खिरकि बैठि गोरी चितवन लागी
उपरा झाप झोपरिया ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो ।
गुरु चरनन बलिहरिया ।

घूंघट का पट खोल रे
तोकों पीव मिलेंगे।
घट घट मे वह साईं रमता
कटुक बचन मति बोल रे।
धन जोबन का गर्व न करिये
झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल मे दिया न बार ले
आसा से मत डोल रे।
जोग जुगत री रंगमहल में
पिय पाये अनमोल रे।
कहत कबीर आनंद भयो है
बाजत अनहद ढोल रे।

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी।
ऊ रंगरेजवा कै मरम न जानै
नहिं मिले धोबिया कवन करै उजरी।
तन कै कूंडी ज्ञान सउंदन
साबुन महंग बिकाय या नगरी।
पहिरि ओढ़ि कै चली ससुरिया
गौवां के लोग कहैं बड़ी फुहरी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी।

मोरी चुनरी मे परि गयो दाग पिया।
पञ्च तत्त कै बनी चुनरिया
सोरह सै बंद लागे जिया।
यह चुनरी मोरे मैके ते आई,
ससुरे में मनुआ खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छूटै
ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहत कबीर दाग तब छूटि है
जब साहब अपनाय लिया।

सतगुरु हैं रङ्गरेज चुनर मोरी रङ्ग डारी ॥
स्याही रङ्ग छुड़ाय के रे
दियो मजीठा रङ्ग,
धोये से छूटै नहीं रे
दिन दिन होत सुरङ्ग ।
भाव के कुंड नेह के जल मे
प्रेम रङ्ग दई बोर,
चसकी चास लगाय के रे
खूब रङ्गी झकझोर ।
सतगुर ने चुनरी रङ्गी रे
सतगुर चतुर सुजान,
सब कुछ उन पर वार दूं रे
तन मन धन और प्रान ।
कह कबीर रङ्गरेज गुर रे
मुझ पर हुये दयाल,
सीतल चुनरी ओढ के रे
भइ हौं मगन निहाल ।

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे क ताना काहे के भरनी
कौन तार से बीनी चदरिया।
इङ्गला पिंगला ताना भरनी
सुषमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कमल दल चरखा डोलै
पांच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागे
ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी
ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यो की त्यो धरि दीनीं चदरिया।

मो को कहाँ ढूँढ़े बन्दे,
मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेडी
ना मैं छुरी गंड़ास में।
नहीं खाल में नहीं पोछ मैं
ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद
ना काबे कैलास में।
ना तौ कौनों क्रिया कर्म में
नहीं जोग बैराग में।
खोजो होय तुरतै मिलिहो
पल भर की तलास में।
मैं तो रहौं सहर के बाहर
मेरी पुरी मवास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
सब सासो की सास में।

ख

कबीर का जीवन-वृत्त

कबीर के जीवन-वृत्त के विषय मे निश्चित रीति से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर के जितने जीवन-वृत्त पाये जाते हैं उनमे एक तो तिथि आदि के विषय मे कुछ नही लिखा, दूसरे उनमे बहुत सी अलौकिक घटनाओ का समावेश है। स्वय कबीर ने अपने विषय मे कुछ बाते कह कर ही सतोष कर लिया है। उनसे हमे उनकी जाति और व्यक्तिगत जीवन का परिचय मात्र मिलता है इसके अतिरिक्त कुछ भी नही।

कबीर-पंथ के ग्रथो मे कबीर के विषय मे बहुत कुछ लिखा गया है। उनमे कबीर की महत्ता सिद्ध करने के लिये उनमे गोरखनाथ[1] और चित्र-गुप्त[2] तक से वार्तालाप कराया गया है। किंतु उनकी जन्म-तिथि और जन्म के विषय पर अधिक ध्यान नही दिया। कबीर चरित्र-बोध[3] ही मे जन्म-तिथि के विषय मे निर्देश किया गया है।

"कबीर साहब का काशी मे प्रकट होना

सवत् चौदह सौ पचपन विक्रमी जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन

---

[1]कबीर गोरख की गोष्ठी, हस्तलिखित प्रति सं० १८७०, (ना० प्र० सभा)

[2]अमरसिंह बोध (कबीरसागर नं० ४) स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित, पृष्ठ १८ (संवत् १९६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

[3]कबीर चरित्र-बोध (बोधसागर, स्वामी युगलानन्द द्वारा संशोधित पृष्ठ ६, संवत् १९६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

सत्य पुरुष का तेज काशी के लहर तालाब मे उतरा। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया। .. उस समय अष्टानन्द वैष्णव तालाब पर बैठे थे, वृष्टि हो रही थी, बादल आकाश मे घिरे रहने के कारण अन्धकार छाया हुआ था, और बिजली चमक रही थी, जिस समय वह प्रकाश तालाब मे उतरा उस समय समस्त तालाब जगमग-जगमग करने लगा और बडा प्रकाश हुआ। वह प्रकाश उस तालाब मे ठहर गया और प्रत्येक दिशाएँ जगमगाहट से परिपूर्ण हो गई।"

कबीर-पथियो मे कबीर के जन्म के सबध मे एक दोहा प्रसिद्ध है —

चौदह सै पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाट ठए।
जेट सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥

इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म सवत् १४५५ की पूर्णिमा को सोमवार के दिन ठहरता है। बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन है कि "गणना करने से सवत् १४५५ मे जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चद्रवार को नही पडती। पद्य को ध्यान से पढने पर सवत् १४५६ निकलता है क्योकि उसमे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है "चौदह सौ पचपन साल गए" अर्थात् उस समय तक सवत् १४५५ बीत गया था।[१] गणना से सवत् १४५६ मे चद्रवार को ही ज्येष्ठ पूर्णिमा पडती है। अतएव इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म सवत् १४५६ की ज्येष्ठ पूर्णिमा को हुआ।"

किंतु गणना करने पर ज्ञात होता है कि चन्द्रवार को ज्येष्ठ पूर्णिमा नही पडती। चन्द्रवार के बदले मगलवार दिन आता है।[२] इस प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन प्रामाणिक नही माना जा सकता। कबीर के जन्म के सबध मे उपर्युक्त दोहे मे 'बरसायत' पर भी ध्यान नही दिया गया है।

भारत पथिक कबीरपन्थी स्वामी श्री युगलानद ने 'बरसायत' पर एक

---

[१]कबीर-ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १८

[२]Indian Chronology—Part I, Pillai.

नोट लिखा है :—

"बरसायत अपभ्रंश है बटसावित्री का। यह बटसावित्री व्रत जेष्ठ के अमावस्या को होती है इसकी विस्तार-पूर्वक कथा महाभारत मे है। उसी दिन कबीर साहब नीमा और नूरी को मिले थे। इस कारण से कबीरपथियो मे बरसाइत महातम ग्रथ की कथा प्रचलित है। और उसी दिन कबीरपथी लोग बहुत उत्सव मनाते हैं।[1]

यह नोट श्री युगलानद जी ने अनुराग सागर मे वर्णित "कबीर साहेब का काशी मे प्रकट होकर नीरू को मिलने की कथा" के आधार पर लिखा है। उस कथा की कुछ पक्तियाँ इस प्रकार है —

यह विधि कछुक दिवस चलि गयऊ। तजि तन जन्म बहुरि तिन पयऊ।
मानुष तन जुलहा कुल दीन्हा। दोउ संयोग बहुरि विधि कीन्हा॥
काशी नगर रहे पुनि सोई। नीरू नाम जुलाहा होई।
नारि गवन लाव मग सोई। जेठ मास बरसाइत होई॥

आदि

इस पद और टिप्पणी के आधार पर कबीर का जन्म जेठ की 'बरसाइत' (अमावस्या) को हुआ। अब यह देखना है कि जेठ की अमावस्या को चद्रवार पडता है या नही। यदि अमावस्या को चंद्रवार पडता है तब तो कबीर का जन्म सवत् १४५५ ही मानना होगा और 'गए' का अर्थ १४५५ के 'व्यतीत होते हुए' मानना होगा। ऐसी स्थिति मे दोहे का परवर्ती भाग "पूरनमासी प्रगट भये" भी अशुद्ध माना जावेगा क्योकि 'बरसाइत' पूर्णमासी को नही पडती, वह अमावस्या को पडती है।

---

[1]अनुराग सागर (कबीर-सागर नं० २) पृष्ठ ८६, भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानंद द्वारा संशोधित स० १९६२
(श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई)

[2]वही, पृष्ठ ८६

मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक 'कबीर—हिज़ बायाग्रेफ़ी' मे इस किंवदती के दोहे का उल्लेख किया है। वे हिंदी मे हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज (सन् १९०२, पृष्ठ ५) का उल्लेख करते हुए स० १४५५ (सन् १३९८) की पुष्टि करते है।[१]

मोहनसिंह के द्वारा दिए हुए नोट मे 'गए' स्थान पर 'गिरा' है। ठीक नही कहा जा सकता कि 'गए' अथवा 'गिरा' शब्द मे से कौन सा शब्द ठीक है। लिखने मे 'ए' और 'रा' मे बहुत साम्य है। यदि 'गए' शब्द 'गिरा' से बन गया है तब तो १४५५ के बीत जाने (गए) की बात ही नही उठती। 'गिरा' 'पडने' के अर्थ मे माना जायगा। अर्थात् स० १४५५ की साल 'पडने' पर। किंतु यहाँ भी 'बरसाइत' और 'पूरनमासी' की प्रतिद्वद्विता है।

इस दोहे की प्रामाणिकता के विषय मे कुछ भी निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। इसके लेखक का भी विश्वस्त रूप से पता नही। कबीर ग्रथावली के सपादक ने अपनी प्रस्तावना मे लिखा है :—

"यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास

---

[१]In a Hindi book Bharat Bhramana which has recently been published, the following verses are quoted in proof of the time when Kabir was born and when he died.

> चौदह सौ पचपन साल गिरा चंदु एक ठाट हुए।
> जेठ सुदी बरसाइत को पूरनमासी तिथि भए ॥
> संवत पंद्रह सौ अर पाच मगहर कियो गमन।
> अगहन सुदी एकदसी, मिले पवन मे पवन ॥

This would then, fix the birth of Kabir in 1398 and his beath in A D. 1448. (R.S H M. 1902, page 5)

का कहा हुआ बताया जाता है ।"[1] किन्तु विद्वान सपादक के इस कथन मे प्रामाणिकता नही पाई जाती । "कहा हुआ बताया जाता है" कथन ही सदेहास्पद है । अतएव हम अपना कथन 'अनुराग—सागर' के आधार पर ही स्थिर करना चाहते हैं जिममे केवल यही लिखा है .—

नारि गवन आव मग सोई । जेठ मास बरसाइत दोई ॥[2]

'बील' अपनी ओरिएटल बायोग्रेफिकल डिक्शनरी[3] मे कबीर का जन्म सन् १४९० (सवत् १५४७) स्थिर करते है और उन्हे सिकदर लोदी का समकालीन मानते हैं । डाक्टर हटर अपने ग्रन्थ इडियन एपायर के आठवें अध्याय मे कबीर का समय सन् १३०० से १४२० तक (सवत् १३५७ से १४७७) मानते हैं । बील और हटर अपने अनुमान मे १९० वर्ष का अतर रखते हैं । जान ब्रिग्स सिकदर लोदी का समय सन् १४८८ से १५१७ (सवत् १५४५—१५७४) मानते हैं । उनके कथनानुसार सिकदर लोदी ने २८ वर्ष ५ महीने राज्य किया ।[4] जान ब्रिग्स ने अपना ग्रन्थ मुसलमान इतिहासकारो के हस्तलिखित ग्रन्थो के आधार पर लिखा है, अतएव उनके काल-निर्णय के सबध मे शका नही हो सकती । यदि बील के अनुसार हम कबीर का जन्म सन् १८९० मे अर्थात् सिकदर लोदी के शासक होने के दो वर्ष बाद मानें तो सिकन्दर

Kabir—His Biography by Mohan Singh, page 19, foot note

[1]कबीर ग्रंथावली-प्रस्तावना, पृष्ठ १८

[2]अनुराग सागर, पृष्ठ ८६

[3]An Oriental Biographical Dictionary—Thomas William Beale. London (1894) Page 204

[4]History of the Rise of the Mohammedan Power in India—By John Briggs, page 589

लोदी की मृत्यु तक कबीर केवल २६ वर्ष के होगे। किन्तु मृत्यु के बहुत पहले ही सिकदर लोदी कबीर के सपर्क मे आ गया था। यह समय भी निश्चित करना आवश्यक है।

श्री भक्तमाल सटीक[1] मे प्रियादास की टीक मे एक घनाक्षरी है। जिसके अनुसार कबीर और सिकदर लोदी का साक्ष्य हुआ था। वह घनाक्षरी इस प्रकार है :—

देखि कै प्रभाव, फेरि उपज्यो अभाव द्विज,
आयो पातसाह सो सिकंदर सुनाँव है।
विमुख समूह संग माता हूँ मिलाय लई,
जाय कै पुकारे "जू दुखायो सब गाँव है॥"
ल्यावो रे पकर वाको देखौ मै मकर कैसो,
अकर मिटाऊँ गाढे जकर तनाव है।
आनि ठाढ़े किये, काज़ी कहत सलाम करौ,
जानै न सलाम, जानै राम गाढे पाँच है॥

इस घनाक्षरी के नीचे सीतारामशरण भगवानप्रसाद का एक नोट है :—

'यह प्रभाव देख करके ब्राह्मणो के हृदय मे पुन मत्सर उत्पन्न हुआ। वे सब काशीराज को भी श्री कबीर जी के वश मे जान कर, बादशाह सिकदर लोदी के पास जो आगरे से काशी जी आया था पहुँचे। श्री कबीर जी की मा को भी मिला के साथ मे ले के मुसलमानो सहित बादशाह की कचहरी मे जाकर उन सब ने पुकारा कि कबीर शहर भर मे उपद्रव मचा रहा है आदि"[2]

इससे ज्ञात होता है कि जब सिकदर लोदी आगरे से काशी आया,

---

[1]भक्तमाल सटीक—सीतारामशरण भगवान प्रसाद
प्रथम बार, लखनऊ (सन् १९१३)

[2]भक्तमाल, पृष्ठ ४७०

अत. कबीर का जन्म-तिथि किसी ने भी निश्चित प्रकार से नही दी। बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार प्रचलित दोहे के आधार पर जेष्ठ पूर्णिमा, चद्रवार सवत् १४५६ और अनुराग सागर के आधार पर जेष्ठ अमावस्या सवत् १४५५ कबीर की जन्म-तिथि है। जेष्ठ पूर्णिमा सवत् १४५६ को चन्द्रवार नही पडता अतएव यह तिथि अनिश्चित है। ऐसी परिस्थिति मे हम कबीर की जन्म-तिथि जेष्ठ अमावस्या सवत् १४५५ ही मानते है। कबीर-पथियो मे भी जेठ बरसाइत स० १४५५ मान्य है जो अनुराग सागर द्वारा स्पष्ट की गई है।

कबीर की मृत्यु की तिथि भी सदिग्ध ही है।

इस सम्बन्ध मे भक्तमाल मे यह दोहा है.—

पंद्रहै सौ उनचास मे, मगहर कीन्हो गौन।
अगहन सुदि एकादसी, मिले पौन मे पौन॥[१]

इसके अनुसार कबीर की मृत्यु स० १५४९ मे हुई। कबीरपथियो मे प्रचलित दोहे के अनुसार यह तिथि स० १५७५ कही गई है —

संवत् पंद्रह से पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी रेलो पौन में पौन॥

सिकदर लोदी सन १४९४ (सवत् १५५१) मे कबीर से मिला था।[३] अतएव भक्तमाल के दोहे के अनुसार कबीर की मृत्यु तिथि अशुद्ध है। कबीर की मृत्यु सवत् १५५१ के बाद ही मानी जानी चाहिए। डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार कबीर का सिकदर लोदी से मिलना चिंत्य है। उनका समय चौदहवी शताब्दी के अतिम वर्षों मे ही मानना समीचीन है। वे लिखते है —

---

[१]भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ४७४

[२]कबीर कसौटी

[३]History of the Rise of the Mohammedan Power in India by John Briggs, page 571—72

"कबीर का समय चादहवी शताब्दी का उत्तरकाल और संभवतः पद्रहवी शताब्दी का पूवकाल मानना अधिक युक्तिसगत जान पडता है। सिकदर लोदी के समय मे उनका होना सर्वथा सदिग्ध है। केवल जनश्रुतियो के आधार पर ही ऐतिहासिक तथ्य स्थिर नहीं हो सकता।"[1]

नागरी प्रचारिणी सभा से कबीर-ग्रथावली का सपादन सं० १५६१ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया गया है।[2] इस प्रति में वे बहुत से पद और साखियाँ नही हैं जो ग्रथसाहब मे सकलित हैं। इस सबध मे बाबू श्यामसुन्दरदास जी का कथन हैं—"इससे यह मानना पडेगा कि या तो यह सवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अदर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदास जी के नाम से प्रचलित हो गई थी, जो कि वास्तव में उनकी न थीं। यदि कबीरदास का निधन सवत् १५७५ मे मान लिया जाता है तो यह बात असगत नही जान पडती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनतर १४ वर्ष तक कबीरदास जी जीवित रहे और इस बीच मे उन्होने और बहुत से पद बनाए हो जो ग्रथसाहब मे सम्मिलित कर लिए गए हो।"[3]

बाबू साहब का यह मत समीचीन जान पडता है। कबीरपथियो के विचार से साम्य रखने के कारण मृत्यु-तिथि स० १५७५ ही मान्य है। इस प्रकार कबीर की जन्म-तिथि स० १४५५ और मृत्यु-तिथि स० १५७५ ठहरती हैं। इसके अनुसार वे १२० वर्ष तक जीवित रहे।

कबीर की जाति मे भी अभी तक सदेह है। कबीरपथी तो उन्हे

[1]कबीर का समय—हिंदुस्तानी, पृष्ठ २१५, भाग २, अङ्क २।

[2]कबीर ग्रंथावली, भूमिका पृष्ठ २।

[3]वही पृष्ठ २१।

जाति से परे मानते है।[१] किंतु किंवदती है कि वे एक ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे। विधवा-कन्या का पिता श्री रामानद का बडा भक्त था। एक बार श्री रामानद उस विधवा-कन्या के प्रणाम करने पर उसे 'पुत्रवती' होने का आशीर्वाद दे बैठे। ब्राह्मण ने जब अपनी कन्या के विधवा होने की बात कही तब भी रामानद ने अपना वचन नही लौटाया। आशीर्वाद के फल-स्वरूप उस विधवा-कन्या के एक पुत्र हुआ जिसे उसने लोकलाज के डर से लहरतारा तालाब के किनारे छिपा दिया। कुछ देर बाद उसी रास्ते से नीरू जुलाहा अपनी नव-विवाहिता स्त्री नीमा को लेकर जा रहा था। नवजात शिशु का सौंदर्य देखकर उन्होने उसे उठा लिया और उसका अपने पुत्र के समान पालन किया, इसीलिए कबीर जुलाहे कहलाए, यद्यपि वे ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे।

महाराज रघुराजसिंह की "भक्तमाला रामरसिकावली" मे भी इस घटना का उल्लेख है पर कथा मे थोडा सा अतर आ गया है।[२] कुछ कबीरपथियो का मत है कि कबीर ब्राह्मण की विधवा-कन्या

---

[१] है अनाम अविचल अविनाशी, अकह पुरुष सतलोक के वासी ॥
—श्री कबीर साहब का जीवन-चरित्र (श्री जनकलाल) नरसिंहपुर (१९०५)

[२] रामानंद रहे जग स्वामी। ध्यावत निसिदिन अंतरयामी ॥
तिनके ढिग विधवा एक नारी। सेवा करै बड़ो श्रमधारी ॥
प्रभु एक दिन रह ध्यान लगाई। विधवा तिय तिनके ढिग आई ॥
प्रभुहिं कियो वदन बिन दोषा। प्रभु कह पुत्रवती भरि घोषा ॥
तब तिय अपनो नाम बखाना। यह विपरीत दियो बरदाना ॥
स्वामी कह्यो निकसि मुख आयो। पुत्रवती हरि तोहि बनायो ॥
ह्वै है पुत्र कलंक न लागी। तव सुत ह्वै है हरि अनुरागी ॥
तब तिय-कर फुलका परि आयो। कछु दिन में ताते सुत जायो ॥

के पुत्र नही थे, वरन् रामानन्द के आशीर्वाद के फल-स्वरूप वे उसकी हथेली से उत्पन्न हुए थे, इसीलिए वे करवीर (हाथ के पुत्र) अथवा (करवीर का अपभ्रश) 'कबीर' कहलाए। बात जो भी हो, कबीर का जन्म जनश्रुति ब्राह्मण-कन्या से जोडती है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कबीर विधवा की सतान थे तो यह बात लोगो को ज्ञात कैसे हुई ? उसने तो कबीर को लहरतारा के समीप छिपा कर रख दिया था। और यदि ब्राह्मण-विधवा को वरदान देने की बात लोग जानते थे तो उस विधवा ने अपने बालक को छिपाने का प्रयत्न ही क्यो किया ? रामानन्द के आशीर्वाद से तो कलक-कालिमा की आशंका भी नही हो सकती थी। इस प्रकार कबीर की यह कलक-कथा निर्मूल सिद्ध होती है। इस कथा के उद्गम के तीन कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि इससे रामानन्द के प्रभुत्व का प्रचार होता है। वे इतने प्रभाव-शाली थे कि अपने आशीर्वाद से एक विधवा-कन्या के उदर से पुत्रोत्पत्ति कर सकते थे। दूसरा कारण यह हो सकता है कि कबीर के पथ मे बहुत से हिन्दू भी सम्मिलित थे। अपने गुरु को जुलाहा की हीन और नीच जाति से हटा कर वे उनका सम्बन्ध पवित्र ब्राह्मण जाति से जोडना चाहते थे। और तीसरा कारण यह है कि कुछ कट्टर हिन्दू और मुसलमान जो कबीर की धार्मिक उच्छृङ्खलता से क्षुब्ध थे वे उन्हे अपमानित और कलकित करने के लिए उनके जन्म का सम्बन्ध इस कलक-कथा से घोषित करना चाहते थे।

कबीर के जन्म-सम्बन्ध मे प्राप्त हुए कुछ प्रमाणो से यह स्पष्ट होता

जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा॥
सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। कढ़ी जुलाहिन तहँ एक रूरी॥
सो बालकहिं अनाथ निहारी। गोद राखि निज भवन सिधारी॥
लालन पालन, किय बहु भाँती। सेयो सुतहिं नारि दिन राती॥

—भक्तमाला रामरसिकावली

है कि वे ब्राह्मण-विधवा की सन्तान न होकर मुसलमानी कुल मे ही पैदा हुए थे। सब से अधिक प्रामाणिक उद्धरण हमे आदि श्री गुरुग्रन्थ साहब मे मिलता है। उक्त ग्रथ मे श्री रैदास के जो पद सग्रहीत हैं, उसमे एक पद इस प्रकार है:—

मलारबाणीभगतरविदासजी की

१ओसतिगुरप्रसाद ॥ . . . ॥ ३ ॥ १ ॥

मलार ॥ हरिजपततेऊजनापदमकवलासपतितासमतुलिनहीआनकोऊ ॥ एकहीएकअनेकअनेककहोइबिसथरिओआनरेआनभरपूरिसोऊ ॥ रहाउ ॥ जाकैभागवतुलेखीऐअवरुनहीपेखीऐतासकीजातिआछोपछीपा । बिआसमहि-लेखीऐसनकमहिपेखीऐनामकीनामनासपतदीपा ॥१॥

जाकैईदिबकरीदिकुलगऊरेवधुकरहिमानीअहिसेखहीदपीरा ॥ जाकै बापवैसोकरीपूतऐसीसरोतिहूरेलोकपरसिधकबीरा ॥ २ ॥ जाकेकुटुम्बकेढेढ-

---

मलार बाणी भगत रविदास जी की

१ओ सतगुरु प्रसादि ॥ . . . ॥३॥१॥

मलार ॥ हरि जपत तेऊ जना पदम कवलासपति ता सम तुलि नहीं आन कोऊ। एक ही एक अनेक अनेक होइ विसथरिओआनरे आन भर-पूरि सोऊ ॥ रहाऊ ॥ जाके भगवतु लेखऐ अवरु नहीं पेखीऐ तास की जाति आछोप छीपा ॥ बियास यहि लेखीऐ सनक महि पेखिऐ नाम की नामना सपत दीपा ॥१॥ जाके ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि मानीअहि सेख सहीद पीरा ॥ जाके बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहू रे लोक परसिध कबीरा ॥२॥ जाके कुटुम्ब के ढेढ सभ ढोंवत फिरहि अजहुँ बनारसी आसपासा ॥ अचार सहित विप्र करहि डंडउति तिनि तनैं रविदासदासानुदासा ॥३॥२॥

—आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी, पृष्ठ ६६८

भाई मोहनसिंह वैद्य, तरनतारन (अमृतसर)

१७ अगस्त १६२७, बुधवार

सबढोरढोवतफिरहि अजहुँ बनारसी आसपासा । आचारसहित विप्रकरहिडंड-उतितिनितनैरविदासदासानुदासा ॥३॥ ॥२॥

रैदास के इस पद मे नामदेव, कबीर और स्वय रैदास का परिचय दिया गया है । नामदेव छीपा (दर्जी) जाति थे । कबीर जाति के मुसलमान थे जिनके कुल मे ईद बकरीद के दिन गऊ का बध होता था जो शेख शहीद और पीर को मानते थे । उन्होने अपने बाप के विपरीत आचरण करके भी तीनो लोको मे यश की प्राप्ति की । रैदास चमार जाति के थे जिनके वश मे मरे हुए पशु ढोए जाते हैं और जो बनारस के निवासी थे ।

आदि श्री गुरुग्रथ के इस पद के अनुसार कबीर निश्चय ही मुसलमान वश मे उत्पन्न हुए थे । आदि ग्रथ का सपादन सवत् १६६१ मे हुआ था । सिक्खो का धार्मिक ग्रन्थ होने के कारण इसके पाठ मे अणु-मात्र भी अतर नही हुआ । निर्देशित आदि श्री गुरुग्रन्थ साहिब गुरुमुखी मे लिखे हुए इसी ग्रथ की अविकल प्रति है ।[१] इस प्रकार यह प्रति और

---

[१]इस दशा और त्रुटि को देखते हुए श्री सतगुरु जी के प्रेरना से यदि सेवा करने का उतसाह दास को हुआ और आदि में भेटा भी अतो अलाप लागत से भी बहुत कम रखने का द्रिड़ विचार और अैसा ही बरताव किया गया । फिर यहि विचार हुआ कि शब्द के स्थान शब्द तथा और हिंदी शब्द या पद हिंदी की लेखन प्रणाली के अनुसार लिखे जावे या यथातथ्य गुरुमुखी के अनुसार ही लिखे जावें ? इस पर बहुत विचार करने से यही निश्चय हुआ कि महान पुरुषो की तर्फ से जो अक्षरों के जोड तोड मंत्र रूप दिव्य वाणी मे हुआ करते हैं उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्व साधारण हम लोग नहीं समझ सकते । परन्तु उनके पठन पाठन में यथातथ्य उच्चारन से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है । इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं । इस विचार के अनुसार ही यह हिन्दी बीड़ गुरमुखी लिखित

उसका पाठ अत्यत प्रामाणिक है। इस प्रमाण का आधार श्री मोहनसिंह ने भी कबीर की जाति के निर्णय करने मे लिखा है।[१]

दूसरा प्रमाण सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की बाणी[२] से प्राप्त होता है। इसमे 'पारख का अग' ॥५२॥ के अन्तर्गत कबीर साहब का जीवन-चरित्र दिया हुआ है। प्रारम्भ मे ही लिखा हुआ है .—

गरीब सेवक होय करि उतरे
इस पृथिवी के माहि
जीव उधारन जगत गुरु बार बार बलि जाहि ॥३८०॥
गरीब काशी पुरी कस्त किया, उतरे अधर उधार।
मोमत को मुजरा हुआ, जंगल में दीदार ॥३८१॥
गरीब कोटि किरण शशि भान सुधि, आसन अधर बिमान।
परसत पूरण ब्रह्म कूं, शीतल पिंडरु प्राण ॥३८२॥
गरीब गोद लिया मुख चूबि करि, हेम रूप झलकंत।
जगर मगर काया करै, दमकैं पदम अनत ॥३८३॥
गरीब काशी उमटी गुल भया, मो मन का बर घेर।
कोई कहै ब्रह्म विष्णु हैं, कोई कहे इंद्र कुबेर[३] ॥३८४॥

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि कबीर ने काशी मे सीधे मुसलमान

अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी से अक्षरो के स्थान हिन्दी (देवनागरी) अक्षर ही किये गये हैं—

वही ग्रन्थ, प्रकाशक की विनय, पृष्ठ १

[१]Kabir—His Biography, By Mohan Singh, Pub Atma Ram and Sons, Lahore 1934

[२]श्री सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की बाणी
संपादक अजरानन्द गरीबदासी रमताराम
आर्य सुधारक छापाखाना, बड़ौदा

[३]वही ग्रन्थ, पृष्ठ १९६

(मोमिन) ही को दर्शन देकर उनके घर मे जन्म ग्रहण किया। और मोमिन ने शिशु कबीर का मुँह चूम कर उसके अलौकिक रूप के दर्शन किये। इस अवतरण से भी कबीर की ब्राह्मणी विधवा से उत्पन्न होने की किवदती गलत हो जाती है। सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की बाणी भी प्रामाणिक ग्रथ माना जाना चाहिए क्योकि वह सवत् १८६० की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित की गई है।[1]

इन दो प्रमाणो से कबीर का मुसलमान होना स्पष्ट है। इन्होने अपनी जुलाहा जाति का परिचय भी स्पष्ट रूप से अनेक स्थानो पर दिया है:—

१ तनना बुनना तज्या कबीर, रामं नामं लिखि लिया सरीर ॥[2]

२ जुलाहै तनि बुनि पाँन न पावल, फारि बुनी दस ठाईं हो ॥[3]

३ जाति जुलाहा मति कौ धीर,
हरषि हरष गुण रमै कबीर ॥[4]

४ तूं ब्राँह्मण मैं कासी का जुलाहा,
चीन्हि न मोर गियाना ॥[5]

---

[1]यह ग्रंथ साहिब हस्तलिखित विक्रम संवत् १८६० मित्ती वैसाख मास का लिखा हुवा मेरे को मुकाम पिलाणा जिल्ला रोहतक में मिला हुआ जैसा का तैसा छापा है जिसको असल लिखा हुआ ग्रन्थ साहिब देखना हो वह बड़ोदे मे श्री जुम्मादादा व्यायाम शाला प्रो० माणेकराव के यहाँ कायम के लिये, रखा गया है सो सब वहाँ से देख सकते हैं —
अजरानन्द गरीबदासी
—वाणी की प्रस्तावना

[2]कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा) इं० प्रे० प्रयाग १९२८, पृष्ठ ९५

[3] वही पृष्ठ १०४

[4] ” ” १२८

[5] ” ” १७३

५ जाति जुलाहा नाँम कबीरा,
बनि बनि फिरौ उदास ।[१]

६ कहत कबीर मोहि भगत उमाहा,
कृत करणी जात्ति भया जुलाहा ॥[२]

७ ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै,
यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ॥[३]

८ गुरु प्रसाद साध की संगति,
जग जीतैं जाइ जुलाहा ॥[४]

कबीर के छठे उद्धरण से तो यही ध्वनि निकलती है कि पूर्व कर्मानुसार ही उन्हे जुलाहे के कुल मे जन्म मिला। ''भया'' शब्द इस अर्थ का पोषक है।

कबीर बचपन से ही धर्म की ओर आकर्षित थे। वे भजन गाया करते थे और लोगो को उपदेश दिया करते थे पर 'निगुरा' (बिना गुरु के) होने के कारण लोगो मे आदर के पात्र नही थे और उनके भजनो अथवा उपदेशो को भी कोई सुनना पसद नही करता था। इस कारण वे अपना गुरु खोजने की चिंता मे व्यस्त हुए। उस समय काशी मे रामानन्द की बडी प्रसिद्धि थी। कबीर उन्ही के पास गए पर कबीर के मुसलमान होने के कारण उन्होने उन्हे अपना शिष्य बनाना स्वीकार नही किया। वे हताश तो बहुत हुए पर उन्होने एक चाल सोची। प्रातःकाल अधेरे ही मे रामानद पचगगा घाट पर नित्य स्नान करने के लिए जाते थे। कबीर पहले से ही उनके रास्ते मे घाट की सीढियो पर लेट रहे। रामानद जैसे ही स्नानार्थ आए वैसे ही उनके पैर की ठोकर कबीर के

---

[१]कबीर ग्रंथावली (ना० प्र० स०), इं० प्रे०, प्रयाग १९२८, पृ० १८१
[२] वही पृष्ठ १८१
[३] " " २२१
[४] " " "

सिर मे लगी। ठोकर लगने के साथ ही रामानद के मुख से पश्चात्ताप के रूप मे 'राम' 'राम' शब्द निकल पडा। कबीर ने उसी समय उनके चरण पकड कर कहा कि महाराज, आज से आपने मुझे राम नाम से दीक्षित कर अपना शिष्य बना लिया। आज से आप मेरे गुरु हुए। रामानद ने प्रसन्न हो कबीर को हृदय से लगा लिया। इसी समय से कबीर रामानद के शिष्य कहलाने लगे। बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी पुस्तक कबीर ग्रथावली मे लिखा है - —

"केवल किवदती के आधार पर रामानन्द को उनका गुरू मान लेना ठीक नही। यह किवदती भी ऐतिहासिक जॉच के सामने ठीक नही ठहरती। रामानन्द जी की मृत्यु अधिक से अधिक देर मे मानने से सवत् १४६७ मे हुई, इससे १४ या १५ वर्ष पहले भी उसके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योकि हम ऊपर उनका जन्म १४५६ सिद्ध कर आए हैं। ११ वर्ष के बालक का घूम फिर कर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नही होता। और यदि रामानन्द जी की मृत्यु सवत् १४५२-५३ के लगभग हुई तो यह किवदती झूठी ठहरती है, क्योकि उस समय तो कबीर को ससार मे आने के लिए अभी तीन चार वर्ष रहे होगे।"[१]

बाबू साहब ने यह नही लिखा कि रामानद की मृत्यु की तिथि उन्होने किस प्रामाणिक स्थान से ली है। नाभादास के भक्तमाल की टीका करनेवाले प्रियादास के अनुसार रामानंद की मृत्यु स० १५०५ विक्रमी मे हुई इसके अनुसार रामानद की मृत्यु के समय कबीर की अवस्था ४६ वर्ष की रही होगी। उस अवस्था मे या उसके पहले कबीर क्या कोई भी भक्त घूम फिर कर उपदेश दे सकता है और रामानन्द का शिष्य बन सकता है। फिर कबीर ने लिखा है —

कबीर मे हम प्रगट भये हैं रामानंद चिताए। (कबीर परिचय)

---

[१] कबीर ग्रन्थावली, भूमिका पृष्ठ २५।

कुछ विद्वानो का मत है कि शेख तकी कबीर के गुरु थे ।[१] पर जिस गुरु को कबीर ईश्वर से भी बडा मानते थे उस गुरु शेख तकी के लिए ऐसा वे नही कह सकते थे —

घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख

(कबीर परिचय)

हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि वे शेख तकी के सत्सग मे रहे हो और उनसे उनका पारस्परिक व्यवहार हो ।

कबीर का विवाह हुआ था अथवा नही, यह सदेहात्मक है । कहते हैं कि उनकी स्त्री का नाम लोई था । वह एक बनखडी बैरागी की कन्या थी । उसके घर पर एक रोज सतो का समागम था । कबीर भी वहाँ थे । सब सतो को दूध पीने को दिया गया । सब ने तो पा लिया, कबीर ने अपना दूध रक्खा रहने दिया । पूछने पर उन्होने उत्तर दिया कि एक सत आ रहा है, उसके लिए यह दूध रख दिया गया है । कुछ देर मे सत उसी कुटी पर पहुंचा । सब लोग कबीर की शक्ति पर मुग्ध हो गये । लोई तो भक्ति से इतनी विह्वल हो गई कि वह इनके साथ रहने लगी । कोई लोई को कबीर की स्त्री कहते है, कोई शिष्या । कबीर ने निस्सदेह लोई को सबोधित कर पद लिखे है । उदाहरणार्थ —

कहत कबीर सुनहु रे लोई
हरि बिन राखन हार न कोई ।

(कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ११८)

सभव है, लोई उनकी स्त्री हो पीछे सत-स्वभाव से उन्होने उसे शिष्या बना लिया हो । उन्होंने अपने गार्हस्थ-जीवन के विषय मे भी लिखा है —

---

[१] Kabir and the Kabir Panth, by Westcott Page 25

नारी तौ हम भी करी, पाया नहीं विचार
जब जानी तब परिहरी नारी बड़ा विकार।
(सत्य कबीर की साखी, पृष्ठ १३३)

कहते हैं, लोई से इन्हे दो सतान थी। एक पुत्र था कमाल, और दूसरी पुत्री थी कमाली। जिस समय ये अपने उपदेशो से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे उस समय सिकदर लोदी तख्त पर बैठा था। उसने कबीर के अलौकिक कृत्यो की कहानी सुनी। उसने कबीर को बुलाया और जब उसने कबीर को स्वय अपने को ईश्वर कहते पाया तो क्रोध मे आकर उन्हे आग मे फेका, पर वे साफ बच गये, तलवार मे काटना चाहा पर तलवार उनका शरीर बिना काटे ही उनके भीतर मे निकल गई। तोप से मारना चाहा पर तोप मे जल भर गया। हाथी मे चिराना चाहा पर हाथी डर कर भाग गया।

ऐसे अलौकिक कृत्यो मे कहाँ तक सत्यता है, यह सभवतः कोई विश्वास न करे पर महात्मा या सतो के साथ ऐसी कथाओं का जोडना आश्चर्य-जनक नही है।

मृत्यु के समय कबीर काशी से मगहर चले आए थे। उन्होंने लिखा है —

सकल जनम शिवपुरी गँवाया
मरति बार मगहर उठि धाया।
(कबीर परिचय)

यह विश्वास है कि काशी मे मरने से मोक्ष मिलता है, मगहर मे मरने से गधे का जन्म। पर कबीर ने कहा —

जौ काशी तन तजै कबीरा
तौ रामहि कौन निहोरा।
(कबीर परिचय)

वे तो यह चाहते थे कि यदि मैं सच्चा भक्त हूँ तो चाहे काशी मे मरूँ चाहे मगहर मे, मुझे मुक्ति मिलनी चाहिए। यही विचार कर वे

मगहर चले गए। उनके मरने के समय हिंदू मुसलमानो मे उनके शव के लिए झगडा उठा। हिंदू दाह-कर्म करना चाहते थे और मुसलमान गाडना चाहते थे। कफन उठाने पर शव के स्थान पर फूल-राशि दिखलाई पडी जिसे हिंदू मुसलमानो ने सरलता से अर्ध भागो मे विभाजित कर लिया। हिंदू और मुसलमान दोनो सन्तुष्ट हो गये।

कविता की भाति कबीर का जीवन भी रहस्य से परिपूर्ण है।

ग

कबीर की कविता से सबध रखने वाले हठयोग और सूफीमत में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दो के अर्थ :—

(अ) हठयोग

१—अवधू

यह अवधूत का अपभ्र श है। जिसका अर्थ है, जो ससार से वैराग्य लेकर ससार के बधन से अपने को अलग कर लेता है।

यो विलध्याश्रमान् वर्णान आत्मंयेव स्थित. प्रमान।
अति वर्णाश्रमी योगी अवधूत स उच्यते॥

ऐसा भी कहा जाता है कि यह नाम रामान्द ने अपने अनुयायियो और भक्तो को दे रक्खा था क्योकि उन्होने रामानुजाचार्य के कर्मकाडो की उपेक्षा कर दी थी।

२—अमृत

ब्रह्मरध्र मे स्थित सहस्त्र-दल-कमल के मध्य मे एक योनि है। उसका मुख नीचे की ओर है। उसके मध्य मे चद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत का प्रवाह होता है। यह इडा नाडी द्वारा बहता है और मनुष्य को दीर्घायु बनाने मे सहायक होता है। जो प्राणायाम के साधनो से अनभिज्ञ हैं, उनका असृत-प्रवाह मूलाधार-चक्र मे स्थित सूर्य द्वारा शोषण कर लिया जाता है। इसी अमृत के नष्ट होने से शरीर वृद्ध बनता है। यदि अभ्यासी इस अमृत का प्रवाह कंठ को बद कर रोक ले तो उसका उपयोग शरीर की वृद्धि ही मे होगा। उसी अमृत-पान से वह अपने शरीर को जीवन की शक्तियो से पूर्ण कर लेगा और यदि तक्षक भी उसे काट ले तो उसके शरीर मे विष का सचार न होगा।

३—अनहद

योगी जब समाधिस्थ होता है तो उसके शून्य अथवा आकाश (ब्रह्मरध्र के समीप के वातावरण) मे एक प्रकार का सगीत होता है जिससे वह मस्त होकर ईश्वर की ओर ध्यान लगाए रहता है। इस शब्द का शुद्ध रूप अनाहद है। यह ब्रह्मरध्र मे निरतर होता रहता है।

४—इल (इडा)

मेरुदड के बाएँ ओर की नाडी जिसका अत नाक के दाहिने ओर होता है।

५—कहार (पाच)

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा।

६—काशी

आज्ञा-चक्र के समीप इडा (गंगा या बरना) और पिंगला (यमुना या असी) के मध्य का स्थान काशी (वाराणसी) कहलाता है। यहाँ विश्वनाथ का निवास है।

> इडा हि पिंगला ख्याता वाराणसीति होच्यते
> वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोत्र भाषित'।

(शिवसहिता, पचम पटल, श्लोक १००)

७—किसान (पंच)

शरीर मे स्थित पच प्राण

उदान, प्रान, समान, अपान और व्यान।

उदान—मस्तिष्क मे

प्रान—हृदय मे

समान—नाभि मे

अपान—गुह्य स्थान मे

व्यान—समस्त शरीर मे

८—खसम

सत्पुरुष (देखिए माया का विवेचना)

९—गगा

इडा नाडी ही गंगा के नाम से पुकारी जाती है। कभी कभी इसे बरना भी कहते हैं। इस नाडी से सदैव अमृत का प्रवाह होता है यह आज्ञा चक्र के दाहिने ओर जाती है।

१०—गगन

(शून्य देखिए)

११—घट

शरीर।

१२—चंद

ब्रह्मरध्र मे सहस्र-दल कमल है। उसमे एक योनि है। जिसका मुख नीचे की ओर है। इस योनि के मध्य मे एक चद्राकार स्थान है, जिससे सदैव अमृत प्रवाहित होता है। यही स्थान कबीर ने चद्र के नाम से पुकारा है।

१३—चरखा

काल-चक्र, (देखिए पृष्ठ २७)

१४—चोर (पंच)

पच विकार

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद।

१५—जमुना

पिंगला नाडी का दूसरा नाम जमुना है। इसे 'असी' भी कहते हैं। यह आज्ञा-चक्र के बाएँ ओर जाती है।

१६—जना (तीन)

तीन गुण—

सत, रज, तम।

१७—तरूवर

मेरुदड।

१८—त्रिकुटो

भोहो के मध्य का स्थान।

१९—ढाई

पच्चीस प्रकृतियाँ।

२०—धनुष

(देखिए त्रिकुटी)

२१—नागिनी

मूलाधार-चक्र की योनि के मध्य मे विद्युल्लता के आकार की सर्प की भाँति साढे तीन बार मुडी हुई कुडलिनी है जो सुषुम्णा नाडी के मुख की ओर है। यह सृजनात्मक शक्ति है और इसी के जागृत होने से योगी को सिद्धि प्राप्ति होती है।

२२—पच जना

अद्वैतवाद के अनुसार विश्व केवल एक तत्त्व मे निहित है—उस तत्त्व का नाम है परब्रह्म। सृष्टि करने की दृष्टि से उसका दूसका नाम है मूल प्रकृति। मूल प्रकृति का प्रथम रूप हुआ आकाश, जिसे अग्रेजी मे ईथर (ether) कहते हैं। आकाश (ईथर) की तरगो से वायु प्रकट हुई। वायु के सघर्षण से तेज (पावक) उत्पन्न हुआ। तेज के सघर्षण से तरल पदार्थ (जल) उत्पन्न हुआ जो अत मे दृढ (पृथ्वी) हो जाता है। इस प्रकार मूल प्रकृति के क्रमश पाँच रूप हुए जो पंच-तत्त्वो के नाम से कहे जाते है :—

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी।

ये पाँचो तत्त्व क्रमशः फिर मूल प्रकृति मे लीन हो सकते है। पृथ्वी

जल मे, जल तेज मे, तेज वायु मे और वायु फिर आकाश मे लीन हो सकता है और फिर अनत सत्ता का एक प्रशात साम्राज्य हो सकता है। यही अद्वैतवाद का सारभूत तत्त्व है। प्रत्येक तत्त्व की पाँच प्रकृतियाँ भी हैं। इस प्रकार पाँच तत्त्व की पच्चीस प्रकृतियाँ हो जाती हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं —

आकाश की प्रकृतियाँ—			मन, बुद्धि, चित्त अहकार, अंतःकरण।
वायु	"	"	प्रान, अपान, समान, उदान, व्यान।
तेज	"	"	आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा।
जल	"	"	शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध।
पृथ्वी	"	"	हाथ, पैर, मुख, गुह्य, लिंग।

२३—पिगला

मेरुदण्ड के दाहिने ओर की नाडी। इसका अंत नाक के बाएँ ओर होता है।

२४—पवन

प्राणायाम द्वारा शरीर की परिष्कृत वायु।

२५—पनिहारी (पंच)

पाँच गुण—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध।

२६—बंकनालि

(नागिनी देखिए)

२७—महारस

(अमृत देखिए)

२८—मंदला

(अनहद देखिए)

२९—षट्चक्र

सुषुम्णा नाडी की छ स्थितियाँ छः चक्रो के रूप मे हैं। उन चक्र

के नाम है—

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध और आज्ञा।

मूलाधार चक्र	गुह्य-स्थान के समीप,
स्वाधिष्ठान चक्र	लिंग-स्थान के समीप,
मणिपूरक चक्र	नाभि-स्थान के समीप,
अनाहद चक्र	हृदय-स्थान के समीप,
विशुद्ध चक्र	कंठ-स्थान के समीप और
आज्ञा चक्र	दोनो भौहो के बीच (त्रिकुटी मे)

प्रत्येक चक्र की सिद्धि योगी की दिव्य अनुभूति मे सहायक होती है।

३०—सुरति

स्मृति का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ 'अनुभव की हुई वस्तु का सद्बोध (उस चीज को जगाने वाला कारण) सहकार से सस्कार के आधीन ज्ञान विशेष है।' श्री माधवप्रसाद का कथन है कि सुरति 'स्वरत' का रूप है जिसका तात्पर्य है अपने मे लीन हो जाना। कुछ विद्वान इसे फारसी के 'सूरत-इ-इलमिया' का रूप बतलाते है। कबीर के 'आदि-मगल' मे सुरति का अर्थ आदि ध्वनि से ही लिया जा सकता है जिससे शब्द उत्पन्न हुआ है और ब्रह्माओ की सृष्टि हुई :—

१ 'प्रथम मूर्ति समरथ कियो घट मे सहज उपचार।'[१]

२ तब समरथ के श्रवण ते मूल सुरति भै सार।

शब्द कला ताते भई पाँच ब्रह्म अनुहार॥ (आदि मंगल)

३१—सुन्न

ब्रह्मरध्र का छिद्र जो (०) बिन्दु रूप होता है। इसी से कुण्डलिनी का सयोग होता है। इसी स्थान पर ब्रह्म (आत्मा) का निवास है। योगी जन इसी रध्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते है। इस छिद्र के छः दरवाजे हैं, जिन्हे कुण्डलिनी के अतिरिक्त कोई नही खोल सकता।

प्राणायाम के द्वारा इसे बद करने का प्रयत्न योगी जन किया करते हैं। इससे हृदय की सभी क्रियाएँ स्थिर हो जाती है।

३२—सूर्य

मूलाधार चक्र मे चार दलो के बीच मे एक गोलाकार स्थान है जिससे सदैव विष का स्राव होता है। इसी स्थान-विशेष का नाम सूर्य है जिससे निकला हुआ विष पिगला नाडी द्वारा प्रवाहित होकर नाक के दाहिनी ओर जाता है और मनुष्य को वृद्ध बनाता है।

३३—सुषुम्ना

इडा और पिंगला नाडी के बीच मे मेरुदड के समानान्तर नाडी। उसकी छ. स्थितियाँ है, जहाँ छ चक्र है।

३४—हस

जीव जो नव द्वार के पिंजड़े में बन्द रहता है।

(आ) सूफ़ीमत

जात ذات सिफत صفت

सूफीमत के अनुसार अहद (परमात्मा) के दो रूप हैं। प्रथम है जात, दूसरा सिफत। जात तो 'जानने वाले' के अर्थ मे और सिफत 'जाना-हुआ' के अर्थ मे व्यवहृत होता है। अतएव जानने वाला प्रथम तो अल्लाह है और जाना हुआ है दूसरा मुहम्मद। जात और सिफत की शक्तियाँ ही अनन्त का निर्माण करती है। इन शक्तियो के नाम है नजूल और उरूज। नजूल का तात्पर्य है लय होने से और उरूज का तात्पर्य है उत्पन्न अथवा विकसित होने से। नजूल तो जात से उत्पन्न होकर शिफत मे अत पाती है और उरूज सिफत से उत्पन्न होकर जात मे अंत पाती है। जात निषेधात्मक है। और सिफत गुणात्मक। जात सिफत को उत्पन्न कर फिर अपने मे लीन कर लेता है। मनुष्य की परिमित बुद्धि जात को सिफत से भिन्न, और सिफत को जात से स्वतन्त्र मानती है।

हक़ حق

सभी धर्मों और विश्वासो का आधार एक सत्य है। उसे सूफीमत मे हक कहते है। उसके अनुसार यह सत्य दो वस्त्रो से आच्छादित है। सिर पर पगडी और शरीर पर अगरखा। पगडी रहस्य से निर्मित है जिसका नाम है रहस्यवाद। अगरखा सत्याचरण से निर्मित है जिसका नाम है धर्म। वह सत्य इन वस्त्रो से इसलिए ढक दिया है, जिससे अज्ञानियो की आँखे उस पर न पडें या अज्ञानियो की आँखो मे इतनी शक्ति कही नही है कि वे उस देदीप्यमान प्रकाश को देख सके। सत्य का रूप एक ही है पर उसका विवेचन भिन्न-भिन्न भाँति से किया गया है। इसीलिए तो ससार में अनेक धर्मों की उत्पत्ति हुई।

अहद احد

केवल एक शक्ति—ईश्वर।

वहदत وحدت

एकात अस्तित्व

इश्क़ عشق

जब अहद अपनी वहदत का अनुभव करता है तो उसके प्यार करने की शक्ति उसे एक दूसरा रूप उत्पन्न करने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार प्रथम स्थिति मे अहद आशिक बनता है और उसका उत्पन्न हुआ दूसरा रूप माशूक है। उत्पन्न हुआ अल्लाह का दूसरा रूप प्रेम मे इतनी उन्नति करता है कि वह तो आशिक बन जाता है और अल्लाह माशूक। सूफीमत मे अल्लाह माशूक है और सूफी आशिक।

बक़ा بقا

जीवन की पूर्णता ही को बका कहते हैं। यह अल्लाह की वास्तविक स्थिति है। मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक जीव को इस स्थिति मे आना पडता है। जो लोग ईश्वर के प्रेम मे अपने को भुला देते हैं वे जीवन मे ही बका की स्थिति मे पहुँच जाते हैं।

शरियत شریعت	सूफीमत के अनुसार 'बका' के लिये साधनाएँ
तरीकत طریقت	
हकीकत حقیقت	

मारफत معرفت	
सितारा ستارا	तारा
महताब مہتاب	चन्द्र
आफताब آفتاب	सूर्य
मदनियत معدنیت	खनिज अल्लाह के प्रादुर्भाव के सात रूप
नबातात نباتات	वनस्पति
हैवानात حیوانات	पशु
इन्सान انسان	मानव

नासूत ناسوت मलकूत ملکوت जबरूत جبروت लाहूत لاهوت हाहूत هاهوت	मनुष्य अपने ही ज्ञान से ईश्वर की प्राप्ति करने के लिए विकास की इन पाँच स्थितियो से होकर जाता है। प्रत्येक स्थिति उसे आगे की दूसरी स्थिति के योग्य बना देती है। इस प्रकार मनुष्य मानवीय जीवन के निम्नलिखित पाँच आसनो पर क्रमश आसीन होता जाता है—प्रत्येक का स्वभाव भी अलग-अलग होता है।
आदम آدم	साधारण मनुष्य
इसान انسان	ज्ञानी
वली ولی	पवित्र मनुष्य
कुतुब قطب	महात्मा
नबी نبی	रसूल

इनके क्रमश पांच गुण हैं

अम्मारा امارہ	इद्रियो के वश में,
लौवामा لوامہ	प्रायश्चित करने वाला,
मुतमेन्ना مطمینہ	कार्य के प्रथम विचार करने वाला,
आलिम عالم	जो मन, क्रम, वचन से सत्य है तथा
सालिम سالم	जो दूसरो के लिए अपने को समर्पित करता है।

तत्त्व

नूर نور	आकाश,
बाद باد	वायु,

आतिश آتش तेज
आब آب जल तथा
खाक خاک पृथ्वी

इन तत्त्वों के अनुसार पाँच इन्द्रियाँ भी हैं

१ बसारत بصارت देखने की शक्ति आँख,
२ समाअत سماعت सुनने की शक्ति कान,
३ नगहत نگہت सूँघने की शक्ति नाक,
४ लज्ज़त لذت स्वाद लेने की शक्ति जीभ तथा
५ मुस مس स्पर्श करने की शक्ति त्वचा

इन्ही इन्द्रियो के द्वारा रूह मुरशिद की सहायता से बका के लिए अग्रसर होती है।

मुरशिद مرشد आध्यात्मिक गुरु या पथप्रदर्शक।
मुरीद مرید वह व्यक्ति जो सासारिक बंधनो से रहित है, बडा अध्यवसायी है और श्रद्धा-पूर्वक अपने मुरशिद के अधीन है।

दर्शन और स्वप्न

खयाली خیالی जीवन के विचारो का प्रतिरूप
कलबी قلبی जीवन के विचारो के विपरीत
नकशी نقشی किसी रूपक द्वारा सत्य का निर्देश
रूही روحی सत्य का स्पष्ट प्रदर्शन
इलाहामी الہامی पत्र अथवा वाणी के रूप मे ईश्वरीय सदेश का स्पष्टीकरण

गिजाई रूह غذائے روح भोजन (सगीत) के सहारे ही आत्मा परमात्मा के मिलन पथ पर आती है। सगीत मे एक प्रकार का कपन होता है जिससे आध्यात्मिक जीवन के कपन की सृष्टि होती है।

सगीत के पाँच रूप

तरब طرب शरीर को सचालित करनेवाला (कलात्मक),

राग راگ मस्तिष्क को प्रसन्न करनेवाला (विज्ञानात्मक),

कौल قول भावनाओ को उत्पन्न करनेवाला (भावनात्मक),

निदा نداء दर्शन अथवा स्वरूप मे सुन पडनेवाला (अनुभावात्मक) तथा

सऊत صوت अनत मे सुन पडनेवाला (आध्यात्मिक)

वजद وجد (Ecstasy) आनद।
नेबाज़ نیاز इन्द्रियो को वश मे करने के लिए साधन।
वजीफा وظیفه विचारो को वश मे करने के लिए साधन।

ध्यानावस्थित होने के पॉच प्रकार

ज़िकर ذکر शारीरिक शुद्धि के लिए,
फिकर فکر मानसिक शुद्धि के लिए,
कसब کسب आत्मा को समझने के लिए,
शग़ल شغل परमात्मा मे लीन होने के लिए तथा
अमल عمل अपनी सत्ता का नाश कर परमात्मा की सत्ता प्राप्त करने के लिए।
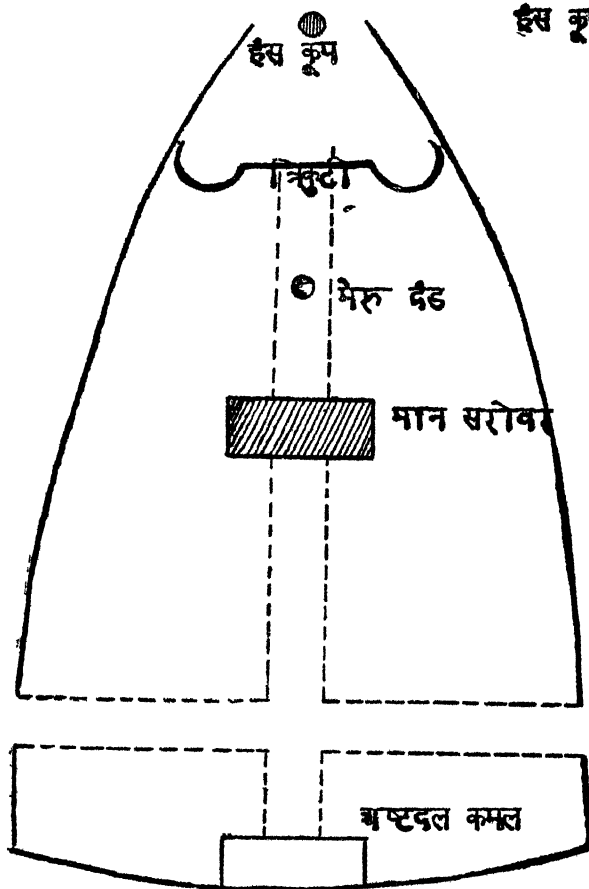
चित्र ३

घ

हंसकूप

लगभग ८० वर्ष हुए विहार के स्वामी आत्माहस ने इस हसतीर्थ की स्थापना की थी। यह बी० एन० डब्लू० रेलवे पर झूँसी मे पूर्व की ओर है। तीर्थ का रूप एक विकसित कमल के आकार का है। इसमे इडा, पिगला और सुषुम्णा नाडियो का दिग्दर्शन भली भाँति कराया गया है। बाईं ओर यमुना के रूप मे इडा है और दाहिनी ओर गगा के रूप मे पिगला। सुषुम्णा का विकास इस स्थान के उत्तरीय कोण मे एक कूप मे से हुआ है। स्थान के मध्य मे एक खभा है जो मेरुदण्ड का रूप है। उस पर सर्पिणी के समान कुडलिनी लिपटी हुई है। मेरुदण्ड से आगे एक मंदिर है जिस पर त्रिकुटी लिखा हुआ है। त्रिकुटी के दोनो ओर आँख के आकार के दो ऊँचे स्थल है। त्रिकुटी की विरुद्ध दिशा मे एक मदिर है जिसमे अष्टदल कमल की मूर्ति है। कुडलिनी मेरुदण्ड का सहारा लेकर अन्य चक्रो को पार करती हुई इस अष्टदल कमल मे प्रवेश करती है। यह स्थान बहुत रमणीक है। कबीर के हठयोग को समझने के लिए यह तीर्थ अवश्य देखना चाहिए।

सहायक पुस्तकों की सूची

अंग्रेजी

१ मिस्टिसिज्म
लेखक—इवजिन अंडरहिल

२ दि ग्रेसेज आॅव् इटीरियर
लेखक—आर० पी पूलेन
अनुवादक—लियोनोरा एल० यार्कस्मिथ

३ स्टडीज इन मिस्टिसिज्म प्रेयर
लेखक—आर्थर एडवर्ड वेड

४. पर्सनल आइडियलिज्म एण्ड मिस्टिसिज्म
लेखक—विलियम राल्फ इनूज

५ स्टडीज इन हीथेनडम् एण्ड क्रिश्चियनडम्
लेखक—डा० ई० स्लेमन
अनुवादक—जी० एम० जी० हंट

६ मिस्टिसिकल एलीमेट इन मोहमेद
लेखक—जान क्लार्क आर्चर

७ दि योग फिलासफी
संग्रहकर्ता—भागु० एफ० करभारी

८ दि मिस्टिसिज्म आॅव् परसोनालिटी इन सूफीज्म
लेखक—रेनाल्ड ए० निकलसन

६ दि मिस्टिसिज्म आॅव् साउंड
लेखक—इनायत खां

१० हिन्दू मेटाफिज़िक्स
लेखक—मन्मथनाथ शास्त्री
११ दि मिस्टीरियस कुडलिनी
लेखक—वसंत जी० रेले
१२ योग
लेखक—जे० एफ० सी० फुलर
१३ दि पार्शियन मिस्टिक्स (जामी)
लेखक—हेडलेंड डेविस
१४ दि पर्शियन मिस्टिक्स (रूमी)
लेखक—हेडजेंड डेविस
१५ सूफी मैंसेज
लेखक—इनायत खाँ
१६. राजयोग
लेखक—मनिलाल नाभूभाई द्विवेदी
१७ कबीर एड दि कबीर पथ
लेखक—वेकसट
१८ दि आक्सफर्ड बुक आँव् मिस्टिकल वर्स
निकलसन और ली (संपादक)
१६ बीजक
अहमदशाह

हिन्दी

१ बीजक श्री कबीर साहब का
(जिसकी पूर्णदास साहेब, बुरहानपुर नागझरी स्थानवाले ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा त्रिज्या की है)
२. कबीर ग्रथावली
संपादक—श्यामसुंदर दास बी० ए०

३ कबीर साहब का पूरा बीजक
पादरी अहमद शाह
४ सतबानी संग्रह १—२
प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
५ कबीर साहब की ग्यान गुदडी रेखते और झूलने
प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
६ कबीर चरित्र बोध
युगलानंद द्वारा संशोधित
७ योग-दर्पण
लेखक—कन्नौमल एम० ए०
८. कबीर वचनावली
अयोध्यासिंह उपाध्याय

फ़ारसी

१ मसनवी
जलालुद्दीन रूमी
२. दीवान-ए शमसी तबरीज़
३. तज़किरातुल औलिया
मुहम्मद अब्दुल अहद (संपादक)
४. दीवान जामी

संस्कृत

१ योग-दर्शन—पतंजलि
२. शिवसंहिता
अनुवादक—श्रीशचंद्र
३ घेरंडसंहिता
अनुवादक—श्रीशचंद्र वसु

कबीर के पदो की अनुक्रमणी

अ

आ

उ

क

ग

व

स

ह

नामानुक्रमणी